माता और पुत्र

लेखक—
श्रीचण्डीचरण बनरजी

॥ ओ३म् ॥

माता और पुत्र

(आदर्श सन्तान-पालन)

श्रीयुत पं० चण्डीचरण बनरजी प्रणीत

"माता व छिले" नामक बङ्गला पुस्तकका

हिन्दी भाषानुवाद।

प्रकाशक :—

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स

पुस्तक-विक्रेता

लोहारी दरवाजा

लाहौर

प्रथम संस्करण २०००] [मूल्य १॥=)

प्रकाशक :—

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स

पुस्तक-विक्रेता

लोहारी दरवाजा

लाहौर

निवेदन

प्रिय सज्जनवृन्द ! यह बात आपपर भलीभांति विदित है कि किसी देश व जातिकी उन्नति उसके जन-समुदायके उच्च आचरणोंपर निर्भर होती है। जिस देशके निवासी जितने अधिक उच्च आचरणधारी होंगे उतना ही अधिक वह देश सुखी, ऐश्वर्य्यवान और समृद्धिशाली होगा। अब स्वभावतः प्रश्न उत्पन्न होता है कि मनुष्य उच्च आचरणधारी कैसे बनें ? इसका उत्तर यह है कि यह बात माता-पिताके अधीन है। यदि माता-पिता अपनी सन्तानको उच्च आचरणधारी बनानेका प्रयत्न करें, और शिशुके गर्भाधान समयसे ही उद्योग करें तो उनकी सन्तान पूर्ण उच्च आचरणधारी बन सकती है, और वही शिशु अपनी आगामी आयु-वृद्धिके साथ २ अपने देश और जातिके महान गौरवके हेतु तथा उसके भूषण बन सकते हैं।

वर्तमान समयकी शिक्षा केवल यही नहीं कि हमारे उपर्युक्त उद्देशकी पूर्ति नहीं करती, किन्तु इसके विपरीत कुत्सित फल उत्पन्न कर रही है। ग्राम ग्राम, नगर नगर, घर घरमें पुकार मच रही है, कि बालक-बालिकायें माता-पिताकी आज्ञा नहीं मानते, शिक्षकोंका सन्मान नहीं करते, विद्योपार्जनमें चित्त नहीं लगाते, ब्रह्मचर्य्यका पालन नहीं करते; इत्यादि २ अनेक दुर्व्यसनोंकी खान बने हुए हैं, इन दुर्व्यसनोंके कारण स्वयं दुःखी होते हैं और अपने माता-पिता तथा अन्यान्य सम्बन्धियोंको भी दुःखी करनेके हेतु बनते हैं। इस महा दुखदाई त्रुटिको दूर करनेके लिए श्रीयुत पण्डित चण्डीचरण बनरजीने बंग भाषामें “मा व छेले” नामक पुस्तककी रचना की थी जिसका

बंगवासियोंने बड़े आदर व सन्मानसे स्वागत करके घर घर प्रचार किया था। हमारे पूज्यपाद स्वर्गवासी पिता श्री श्रद्धेय प्रकाशदेवजीकी नितान्त गहरी हार्दिक इच्छा थी कि वह अपने पंजाब प्रान्त निवासी भाइयोंको भी बंगाल प्रांतकी नाईं उच्च आचरणधारी तथा विद्या-अलंकृत दशामें देखें, इसीलिए वह यावज्जीवन इसी कार्य्यमें प्रवृत्त रहे और बंगदेशकी उत्तमोत्तम पुस्तकोंका बंगलासे हिन्दी भाषा तथा उर्दूमें अनुवाद कराके देश व जातिके लाभार्थ प्रकाशित करते रहे। यह पुस्तक "माता और पुत्र" उन्हींकी शुभेच्छाका फल है। यह उत्तम पुस्तक दो भागोंमें विभक्त है। इसमें उपन्यासके ढंगपर यह दर्शाया गया है कि माता-पिता क्योंकर गर्भावस्थासे ही अपनी सन्तानको उत्तम, श्रेष्ठ, सदाचारी, आज्ञाकारी, सहिष्णु, धीर, वीर, विद्वान् और ऐश्वर्य्यवान् बना सकते हैं। इस पुस्तककी लेखनशैली इतनी रोचक और सरल व मनोरंजक है कि एक बार आरम्भ करके विना समाप्त किए बस करनेको जी नहीं चाहता। इस पुस्तकके अनुवादक श्रीमान् पं० गोपालदासजी स्वर्गवासीको हम धन्यवाद देते हैं, और साथ ही दयामय परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि वह अपनी ऐसी दया और अनुग्रह करें कि इस पुस्तकका बंगदेशकी नाईं पंजाब प्रान्तमें भी घर २ प्रचार हो, हमारे समस्त भारतवासी भाई भी इसकी अमृतरूपी सद्-शिक्षाको ग्रहण करके अपनी प्रिय सन्तानको उच्च आचरण-धारी और देशहितैषी बना सकें, जिससे जहां ग्रन्थकारका मनोरथ पूर्ण हो वहां देश और जातिका भी हित, मंगल और कल्याण-साधन हो।

ता० २७—१—२५ प्रभुदयाल गुप्त।

* माता और पुत्र *

प्रथम भाग।

प्रथम परिच्छेद ।

सुबोधचन्द्र कलकत्तानिवासी एक सामान्य गृहस्थ हैं। इनकी आयु पच्चीस या छब्बीस वर्षकी होगी। यह कलकत्तेके ही किसी दफ्तरमें काम करते हैं।

दफ्तरसे जो मासिक वेतन मिलता है उससे बड़ी कठिनतासे वे सपरिवार निर्वाह करते थे। यह साधु-स्वभाव, सच्चरित्र और शुद्धाचारी पुरुष थे। इनके घरमें चार प्राणी थे—माता, स्त्री, एक सुकुमार शिशु और आप। पुत्रकी आयु अभी केवल ३ मासकी थी, और चौथे मासमें अभी प्रवेश ही किया था।

एक दिन सुबोधचन्द्र सायंकालको दफ्तरके कार्य्यसे छुट्टी पा, घरमें आ अभी दफ्तरके वस्त्र उतार ही रहे थे कि इनकी स्त्री स्वाभाविक ही उनके पास आ खड़ी हुई। उसने अपने भर्त्ताको बहुत उदासीन और चिन्ताग्रस्त देखा। अपने पतिकी यह दशा देख बड़ी नम्रतासे प्रार्थना करने लगी—"प्राणनाथ! आज आप इस प्रकार उदासीन और चिन्ताग्रस्त क्यों हैं?"

उसके दो तीन वार विनम्रभावसे पूछनेपर भी सुबोधचंद्रने इतना ही उत्तर दिया कि नहीं, कुछ नहीं। कोई विशेष आपत्ति या चिन्ताका कारण नहीं।

स्त्री—निस्संदेह आप अपनी उदासीनता और चिन्ताका कारण मुझको बतलाना नहीं चाहते, सम्भव है मुझसे कहनेसे कोई विशेष खराबी या किसी प्रकारकी विशेष हानिकी सम्भावना समझते हों।

सुबोध—विशेष हानि क्या होती है, तुमसे कहनेसे कोई लाभकी आशा नहीं। यदि मैं कह भी दूं तो तुम मेरे अभिप्रायको शायद ही समझ सकोगी।

स्त्री—क्यों! क्या मैं इतनी जड़मति हूं कि आपके स्पष्ट रूपसे वर्णन करनेपर भी मैं उसके आशयको न समझ सकूं।

सुबोध—क्यों नहीं! किसी लड़ाई-झगड़ेकी बात हो, या किसीकी निन्दा-चुगलीकी बात हो, फिर तो विशेष कहनेकी आवश्यकता ही नहीं, मुखसे एक शब्द निकलते तुम पूर्ण हाल आशय-सहित समझ सकती हो। परन्तु कोई ऐसी बातचीत, जिसमें किसीकी साधुताका वर्णन हो, महत्ताके भाव हों, या किसी मनुष्यकी गुण-ग्राहकताका वर्णन हो,समझना तुम्हारे लिए कठिन है। यह अवगुण केवल तुममें ही नहीं, वरंच भारतवर्षकी प्रायः सभी स्त्रियोंमें है।

सरलाके मनपर स्वामीके इन वचनोंसे चोट तो बड़ी लगी, परन्तु इससे वह अपने पतिपर क्रुद्ध न हुई, वरंच मन ही मन

अपने तथा अपनी अन्य बहिनों—स्त्री-जातिकी, ऐसी प्रकृतिको सोच परम चिन्ता-सागरमें डूब गई। और इस बातको मन ही मन विचारती हुई, कि किस प्रकार मैं अपने प्राणनाथकी इच्छा और अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये सहायक हो सकती हूं, घरके काम-काजमें लग गई।

भोजन करनेके अनन्तर भी सुबोधचन्द्र उसी प्रकार उदास और चिन्तायुक्त बैठे हुऐ थे, कि इतनेमें सरला भी भोजनादि कर और अपनी सासके चरणोंको दबा, घरके संपूर्ण कार्य्योंसे छूट्टी पा सोनेके कमरेमें आई। द्वारमें प्रवेश करते ही स्वामीके मुखपर वही उदासी छाई देख और वैसे ही चिन्तित अवस्थामें पड़े हुए देख शीघ्रतासे आगे बढ़ी और उनको प्रसन्न करनेके अभिप्रायसे, मुसकरा कर, बड़े हास्य-विलाससे कहने लगी, कि यदि आप मुझको ऐसी नालायक और रद्दी समझते हैं, तो आप मुझको परित्याग क्यों नहीं कर देते। जिससे अपने जीवनकी आशा पूर्ण होनेकी संभावना न हो, ऐसे अमावसके चांदसे क्या लाभ है। मेरे विचारमें तो मुझ सरीखी मूर्ख स्त्रीको घरसे निकाल देना ही उचित है।

सुबोध—नहीं नहीं, मैंने तो वह बात सर्वसाधारण स्त्रियोंके विषयमें तुम्हें सुनाकर कही थी, मैं यह तो समझता हूं, कि मेरी आशापूर्त्तिके तुममें बहुतसे गुण हैं। निस्संदेह भारतनिवासिनी स्त्री-जातिकी, बड़ी शोचनीय दशा है। सावधानीसे सुनो, अब जो मेरे मनकी चिन्ता है, वह मैं तुमसे वर्णन करता हूं। परन्तु जिस

बातके लिये मैं ऐसी चिन्ता और शोक कर रहा हूं; जिस प्रकार यह दूर हो, क्या तुम उसके लिये सहायता करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करती हो? पर हां, इतना सोच लेना, कि यदि तुमको इस कामके लिये कुछ कष्ट सहना पड़े, कुछ सोचना पड़े, या किसी वस्तुका त्याग भी करना पड़े और अपना सुख त्याग, दुःख भी उठाना पड़े, तो क्या तुम यह सब सहन करनेको तैयार रहोगी?

सरला—आप मेरे स्वामी हैं, जिससे आपकी आशा पूर्ण हो, आपको सुख और आनन्द प्राप्त हो उसके लिये चाहे मुझे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े, उसे पूर्ण करनेके लिये प्राणों-तक न्यौछावर करना मेरा कर्त्तव्य है; मुझे इसीमें सुख और इसीमें आनन्द है और यही मेरा धर्म्म है।

सुबोध—अब जिस बातकी मुझे चिन्ता है वह सब मैं तुमसे कहता हूं सुनो। यह लाल जो परमात्माने हमको दिया है इसके लिये क्या कभी कुछ तुमने सोचा है?

सरला—इसके लिये मैं क्या सोचती?

सुबोध—किस प्रकार यह बालक धर्म्मात्मा, साधुस्वभाव और यशस्वी मनुष्य बन सकता है इसके विषयमें तुमने क्या कभी चिन्तन किया है?

सरला—बालकको बहुत अच्छी तरह खिलाऊंगी, पिलाऊंगी, स्वच्छ वस्त्र पहनाऊंगी, इसीसे यह मनुष्य बन जायेगा।

सुबोध—क्या खिलाने पिलाने और पहनानेसे ही बच्चा मनुष्य बन जाता है! और माताका इतना ही कर्त्तव्य है? यह

ठीक नहीं, पशुपक्षी भी तो अपने बच्चोंको भलीभांति खिलाते-पिलाते और उनकी रक्षा करते हैं। यदि मनुष्यका भी इतना ही कर्त्तव्य हो, तो फिर पशु और मनुष्यमें भेद ही क्या हुआ ?

सरला—क्यों, हम अपने पुत्रको लिखना-पढ़ना सिखायेंगे, यह धन कमायेगा, दस मनुष्योंका पालन करेगा और संसारमें सुखसे समय व्यतीत करेगा। पशु-पक्षी तो यह नहीं करते।

सुबोध—तुम्हारे पड़ोसमें राम बाबूने लिख-पढ़ एम० ए० पास किया है, धन भी बहुत कमाते हैं, दस मनुष्योंमें उनकी मानप्रतिष्ठा भी बनी हुई है। क्या तुम्हारा पुत्र यदि दूसरा राम बाबू बन जाय, तो तुम उसको पसंद करोगी ?

सरला—हा फूटी किस्मत मेरी ! यदि मेरे पुत्रको राम बाबू बनना है तो अभी मर जाय तो अच्छा है। ऐसे पुत्रसे क्या लाभ है जो लिखा-पढ़ा हो, धन भी कमाता हो और दस आदमियोंमें मान भी पाता हो परन्तु जिसकी माताकी आंखोंका जल सूखता नहीं। स्त्री दुःखसे दिन काट रही है। ऐसे पुरुषके धन कमानेसे क्या लाभ है ? राम बाबू इतना रुपया लाकर कहां खर्च करता है यह पता नहीं।

सुबोध—हमें राम बाबूके जमा-खर्चकी पड़तालकी क्या आवश्यकता है ? हमें तो यह सोचना है, कि हमारा लड़का राम बाबू-सा न बने। यदि हमारी यह इच्छा है तो फिर तुम्हारा लड़का किस प्रकारका होना चाहिये जिससे तुम्हारी आशा पूर्ण हो। इस विषयमें तुम क्या सोचती हो ?

सरला—मैं सोचती तो बहुत कुछ हूं और समझती भी हूं, कि इस प्रकारका बालक होनेसे, हमारी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। परन्तु उसको भलीभांति वर्णन नहीं कर सकती, इसलिये कृपा करके आप ही वर्णन कीजिये।

सुबोध—यह कोई आसान बात नहीं है! इस संसारमें यदि कोई कठिन कार्य्य है तो वह संतान-पालन है। मैं जो कुछ कहता हूं, ईश्वर जाने, तुम उसका पूर्ण आशय भी समझती हो या नहीं। मेरे विचारमें तो तुम इस त्रुटिको अनुभव भी नहीं कर सकतीं। बात तो यह है कि यदि हम अपने बच्चेको मनुष्य बनाना चाहें, तो अभीसे हमको इसके लिये प्रयत्न करना उचित है। और सबसे पूर्व हमें अपने आपको संतानके सुयोग्य बनानेके योग्य बनाना चाहिये। तुम्हारे भीतर इस योग्यताके विषयमें अनेक त्रुटियां हैं जिनको तुम अनुभव भी नहीं करतीं। जबतक वह तुम्हारी त्रुटियां दूर न हों संतानका सुयोग्य बनाना परम कठिन ही नहीं वरंच असंभव है। यूरोपके एक सुप्रसिद्ध विचारशील, विद्वानने संतानके पालनके विषयमें लिखा है, क्या यह हैरानीकी बात नहीं कि जिन युवक स्त्री-पुरुषोंको अभी माता-पिता बनना है, उनको सन्तानके सुयोग्य बनानेकी, जो अतीव कठिन काम है, तनिक भी शिक्षा नहीं दी जाती!

क्या यह खेदजनक बात नहीं कि आजकल माताओंके दुर्बुद्धि-जनित विचारों, और मूर्ख, जड़बुद्धि धाइयोंके अपवित्र विचारोंपर शिशु-पालन व शिशु-शिक्षाका बोझ छोड़ा जावे? हमें

सोचना चाहिये कि यदि आंखका (मोतियाबिंदका) आपरेशन कराना हो तो एक जड़बुद्धि किसानसे वह काम लें, तो क्या हमारी आंख बन जायेगी ? जैसे यह निहायत असंभव है ठीक शिशु-शिक्षाकी भी यही दशा है, वह मूर्ख माताओं व जड़बुद्धि दासियोंसे नहीं हो सकती ।

अफसोस तो यह है, कि शिशु-पालन जैसे कठिन कार्य्यको, हम एसे मूर्ख जड़बुद्धिके हाथोंमें दे देते हैं, जो इस विद्यासे लेशमात्र भी शिक्षित नहीं हैं और हम लोग तनिक भी नहीं सोचते कि ऐसी दशामें संतान क्या बनेगी। हाय ! हम कैसे बेसमझ मनुष्य हैं ।

सरला—अच्छा, मुझमें क्या २ त्रुटियां हैं वह कृपा करके बतला दीजिये, मैं शक्तिभर प्रयत्न कर उनके दूर करनेका परिश्रम करूंगी ।

सुबोध—मैं इस समय तुम्हारा दोष प्रकट करना आवश्यक नहीं समझता, मुझे तो इस बच्चेको मनुष्य बनानेकी चिन्ता है, इसीपर विचार करना है। आज दफ्तरसे आकर मैं इसी चिन्तामें मग्न हूं, कि सन्तानको धर्म्मात्मा, सुशील, साधु-प्रकृति बनाना ही माता-पिताका परम धर्म्म है; जिसपर किसीका भी विचार नहीं। तुमने तो अपने विवाहसे पूर्व पिताके घरमें थोड़ी बहुत शिक्षा पायी है और वहां भी तुमको सुशिक्षिता बनानेका यावतसामर्थ्य यत्न किया गया है। अब यदि तुम सन्तान-पालन-संबन्धी पूर्ण यत्नसे शिक्षा प्राप्त करनेके लिये यत्न करोगी, तो यह मेरी मनो-

कामना सिद्ध हो सकती है और इस बच्चेका मंगल हो सकता है। किस प्रकार संतानको सुयोग्य पुरुष बनाया जाता है इसका प्रयत्न, क्या हमारे घर और क्या अन्य लोगोंके यहां, कुछ भी नहीं किया जा रहा है और न इस प्रयत्नके होनेकी शीघ्र संभावना है।

सरला—आपके कथनमेंसे दो बातें मेरी समझमें नहीं आईं। एक आपने कहा है "सन्तानका मङ्गल" और दूसरी, "इस प्रयत्नके होनेकी शीघ्र संभावना है" यह कैसे आपने कह दिया है, क्या मेरे और आपके पूर्ण प्रयत्न करनेपर भी हम इस शिशुकुमारको पुरुष नहीं बना सकेंगे?

सुबोध—हां, मेरे कहनेका यही तात्पर्य्य है, कि एक बार मैंने एक समाचारपत्रमें पढ़ा था, एक सुयोग्य बुद्धिमानका लेख था कि "संतानको सुयोग्य बनानेके लिये उसके जन्मसे ३० वर्ष पहिले ही प्रयत्न करना उचित है" क्या इसका मतलब तुमने कुछ समझा?

सरला—नहीं! मैं कुछ नहीं समझ सकी। बच्चेकी उत्पत्तिसे पूर्व ३० वर्ष प्रयत्न ही किस प्रकार किया जा सकता है! क्या यह वही कहावत न हुई "राम-जन्मसे पूर्व रामायण"?

सुबोध—हां, यह तुमने ठीक कहा है,"राम-जन्मसे पूर्व रामायण" की कहावत शिशु-शिक्षाके बारेमें ही ठीक घटती है। संतानोत्पत्तिसे ३० वर्ष पहिले ही उनकी शिक्षाका आरंभ होना चाहिये, क्योंकि जिसे माता बनकर शिशु संतानका लालन-पालन करना है, जिसे दस मास और दस दिन संतानको गर्भमें

धारण करना है उस माताके गर्भमें शिशुके आनेसे पूर्व ही उसकी माताको विशेष सावधानीकी आवश्यकता है।

माताकी उदार प्रकृति और अनुदार प्रकृतिसे ही संतानके सुसंस्कार और कुसंस्कारोंका गूढ़ सम्बंध है। माताके भले या बुरे कर्म्मोंका प्रभाव संतानपर पड़ता है। माताके आचार-व्यवहार, रहन-सहन और चरित्रका बच्चेके चरित्रपर बड़ा असर पड़ता है और इसीपर संतानका साधु-प्रकृति होना व दुष्ट प्रकृति होना निर्भर है। इसलिये सुकुमार कन्याका पहिलेहीसे सच्चरित्र, सरल-स्वभाव और सदाचारी बननेके लिये प्रयत्न करना, मानों उससे उत्पन्न होनेवाली संतानके लिये सत्पथगामी बनानेकी सीढ़ी तय्यार करना है। जिस क्षेत्रमें तुम उत्तम वृक्षका बीज बोना चाहो, उस धरतीको पहिले ही सुधारना परम आवश्यक है, जिसके लिये बहुत समय और बहुत परिश्रमकी आवश्यकता है। इसका पूर्ण आशय तुमने समझ लिया है या नहीं?

सरला—हां, अब तो मैं भलीभांति समझ गई, परन्तु यह बात समझकर तो मेरे मनमें और चिन्ता उत्पन्न हो गई है। यह तो मैं समझ गई, कि लड़केको पात्र व कुपात्र बनाना और पुत्रको सुयोग्य पुरुष बनाना माताका काम है।

सुबोध—तुम इस एक ही बातको सुनकर, इतनी चकित हो गई हो, इस संतान-पालन-सम्बंधी जो जो विचार, विचारवान विद्वानोंने लिखे हैं,वह सुनकर.तो तुम अतीव चकित हो जाओगी। इस विषयको अभी तो मैंने कहना आरंभ किया है, मैं पूरा पूरा

खोलकर यह विषय तुमको समझाऊंगा, तुम सावधान होकर सुनो।

सरला—मुझे सुननेकी बड़ी इच्छा है। आप कहें, मैं बड़े ध्यानसे सुनूंगी।

सुबोध—फ्रान्सके सुप्रसिद्ध महाराज नेपोलियन बोनापार्टका नाम क्या तुमने सुना है?

सरला—हां, कुछ दिन हुए एक समाचारपत्रमें नेपोलियन और फ्रांसके राज्य-विप्लव-सम्बन्धी वर्णनका एक प्रस्ताव मैंने पढ़ा था।

सुबोध—हां, उसी नेपोलियन बोनापार्ट महाराजने एक दिन मैडम कैंपनसे बातचीत करते करते कहा था, कि आजकलकी शिक्षा-प्रणाली किसी कामकी नहीं! तो उन्होंने उत्तर दिया था, कि आपकी सम्मतिमें आजकलकी शिक्षा-प्रणालीमें किस किस बातकी न्यूनता है। मैडमने इसके जवाबमें उत्तर दिया था, "जननीकी।" यह सुनकर सम्राट् चकित हो, कुछ समयतक सोच-कर बोले—"हां ठीक है, "जननी" यह विद्याका ही द्वितीय नाम है। मैडम! आप माताओंको शिशुपालन व शिशुशिक्षासम्बंधी शिक्षा देनेका उपाय करें।"

क्या आपने इस बातको समझा है कि माता इस शब्दमें ज्ञान और धर्मकी शिक्षाको एक विस्तृत क्षेत्र विद्यमान है? क्या तुम जानती हो, कि बच्चेके लिये ममता कैसी उपयोगी है? इस-लिये शास्त्रोंमें भी लिखा है, "माता बच्चेके लिये स्वर्ग है।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" माता और जन्मभूमि स्वर्गसे भी बढ़कर है। परमेश्वरने माता-पिताको बच्चोंके लिये अपना प्रतिनिधि बनाकर, संसारमें भेजा है। माता-पिता ही बच्चेका ईश्वर-समान लालन-पालन करते हैं। उनके शुद्धाचारी होनेसे ही, संतान शुद्धाचारिणी होती है और उनके दुराचारी होनेपर सन्तान कदापि सदाचारिणी नहीं हो सकती।

सरला चुपचाप स्वामीके वचनोंको सुनती रही, अब इनके वचन समाप्त होते ही, वह लम्बी और ठण्ढी सांस भरकर कहने लगी—"आजतक मैंने कभी भी बालकके विषयमें विचार नहीं किया था। मेरी समझमें अब यह बात आई है कि सन्तानका होना कोई सौभाग्यकी बात नहीं। यदि सन्तान बड़ी होकर यथार्थ मनुष्य बननेके स्थान पशुओंके समान जीवन निर्वाह करे तो उससे न होना ही अच्छा है। मैं तो अब चकित होकर सोचती हूं कि किस प्रकार मैं अपने पुत्रको यथार्थ मनुष्य बना सकूंगी।"

सुबोध—अब रात्रि अधिक चली गई, आज यहींपर इस विषयको समाप्त कर दें। हम फिर और किसी समय इस विषयपर बातचीत करेंगे।

सरला—"अन्य समय" से आपका क्या आशय है? क्या कहीं दो चार महीनोंके अनन्तर तो आपका प्रयोजन नहीं?

सुबोध—तो क्या तुम यह चाहती हो कि दफ्तरके कामसे थके हुए आकर ही इस अधूरी शिक्षाके विषयमें १० बजे रात्रितक समय व्यतीत किया करूं?

सरला—क्या आप मेरा दिल लेनेके लिये मेरे साथ हंसी करते हैं? मेरे मनमें आपकी इन बातोंको सुनकर जितना फिकर पैदा हो गया है, उसका मैं पूरा २ वर्णन नहीं कर सकती, आप इस अपने पुत्रको मनुष्य बनानेके लिये मुझे जो शिक्षा देंगे, यह आप व्यर्थ न समझें, यही मेरी प्रार्थना है।

सुबोध—बहुत अच्छा, अब जब मुझे समय मिलेगा मैं अपने श्रमका तनिक भी विचार न करके तुमको इस विषयमें शिक्षा दूंगा और यदि तुम उस शिक्षापर चलकर दिखलाओगी, तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा।

द्वितीय परिच्छेद ।
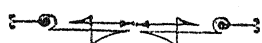
दूसरे दिन रविवार था, उस दिन भोजन करनेके पीछे वे कहीं बाहर नहीं गये। इसलिये उस दिन उनको बहुत समय मिल गया। सुबोधचन्द्र और सरला एकान्तमें बैठ, शिशुपालन-विषयक बातचीत फिर करने लगे।

सु०—सरला! कल रातको जो बातचीत हुई थी वह तुमको याद है या नहीं?

स०—हां, मुझे सब स्मरण है, मैं उसमेंसे तनिक भी नहीं भूली हूं। कल आपने जो कुछ कहा था उसका आशय यह था कि "माता बननेसे पूर्व, माता-सम्बन्धी सम्पूर्ण शिक्षा भलीभांति पा लेनी चाहिये।"

सु०—हां! तुमने ठीक समझा। आज मैं इसी विषयमें और भी कुछ कहूंगा। एक अंग्रेजी पुस्तकमें एक स्थानमें लिखा है, "एक स्त्रीने अपने पुरोहितसे पूछा, मेरे पुत्रकी अब आयु चार वर्षकी है मैं इसकी शिक्षा कबसे आरम्भ करूं?" उन्होंने कहा "हे भद्रे, यदि अबतक तुमने इसे शिक्षा देनी आरम्भ नहीं की तो तुमने इसकी आयुके चार वर्ष व्यर्थ खो दिये।" बतलाओ इसका क्या आशय है?

स०—वाह! भला चार वर्षका बच्चा क्या पढ़ेगा! हमारे देशमें तो पांचवें वर्ष बालकको पट्टी दी जाती है, इतने

छोटे बालकको पढ़ाना आरम्भ करनेसे, वह जीता कैसे रह सकता है?

सु०—क्या छोटे बच्चोंको इस प्रकार शिक्षा देनी चाहिये, जिससे उनको बोझ प्रतीत हो? क्या तू यह समझती है, कि ६ मास या १ वर्षके बालकको पट्टी और कलम दवात देकर गुरुके पास या बालबोध देकर पाठशालामें भेजा जावे? बच्चा तो जन्मते ही जो कुछ उसके लिये जरूरी है उसकी शिक्षा ग्रहण करने लग जाता है।

लार्ड ब्रोहम नामके एक विलायती पण्डित कहते हैं, कि "बच्चा १८ मासका होकर अढ़ाई वर्षकी आयु होनेतक, एकही वर्षमें बाहरकी दुनियाके विषयमें, अपनी सामर्थ्य और अन्य २ वस्तुओंका स्वभाव तथा अपने और दूसरेके मनका हाल, जितना सीख लेता है, अपनी सारी आयुमें उतना नहीं सीख सकता"* इसका अभिप्राय यह है, कि इस एक सालमें बच्चा सारी उम्रकी शिक्षाका बीज ग्रहण कर लेता है। इस एक वर्षकी शिक्षा ही उसकी प्रधान शिक्षा है। पीछे जो वह शिक्षा पाता है वह इसी वर्षकी शिक्षारूपी बीजके पेड़के पत्ते, फल, फूल और टहनियोंके समान सुशोभित होनेके समान है।

स०—यह कैसी आश्चर्यकी बात है! आपके कहनेसे यह जान पड़ता है, कि ढाई वर्षका बालक सब कुछ सीख जाता है।

---

* Smiles' Character, page 32,

यह कैसे हो सकता है मेरी समझमें नहीं आता, कि इतना छोटा बच्चा क्योंकर इतनी बातें सीख सकता है।

सु०—बच्चेकी शिक्षा किस उमरसे आरम्भ होनी चाहिये, यह तुम्हारी समझमें नहीं आता। भला यह तो बतलाओ जिस शिक्षासे मेरा अभिप्राय है वह कौनसी शिक्षा है, इस १ वर्षमें बच्चा क्या २ सीखता है?

स०—आपके कथनसे प्रतीत होता है कि बालक जो कुछ देखता है वही सीखता है।

सु०—हां, ठीक है, बालक जो कुछ देखता है वही सीखता है, पर जो कुछ सीखता है कुछ न कुछ उसका ज्ञान भी प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं।

स०—हां! सीखनेके साथ साथ कुछ न कुछ ज्ञान भी प्राप्त कर लेगा। अब आपके कहनेका थोड़ा-बहुत भाव मैंने समझ लिया है।

सु०—जन्म ग्रहण करते ही बच्चा शिक्षारूपी माताकी गोदमें बैठता है, बच्चा जो कुछ देखता है वही उसके लिये नवीन है। वह बोल नहीं सकता, परन्तु जगत्‌के सौन्दर्यको देखता है, और धीरे २ उस विषयका ज्ञान भी कुछ न कुछ प्राप्त करता है।

तुमने देखा होगा, कि बच्चा उत्पन्न होते ही रोने लगता है। वह क्यों रोने लगता है, क्या तुम समझती हो? रोनेका यही कारण है, कि जन्म लेते ही उसने किसी वस्तुकी आवश्यकता

और भूखका अनुभव किया है, जो कि रोनेसे पूरी होती है। यह ज्ञान प्रकृतिने चुपचाप उसमें उत्पन्न कर दिया है। भूख लगनेपर बच्चा रोने लगता है, अचानक चोट लगनेपर बच्चा रो देता है। प्रकृतिने उसे जतला दिया है, कि रोनेसे माता दूध पिलायेगी, चोटका उपाय करेगी।

इसी प्रकार बच्चेने हंसना सीखा और धीरे २ अपने नन्हें २ हाथ पांव मारकर खेलना सीखा और तदनन्तर चलना-फिरना सीखा। क्या यह सब शिक्षा नहीं है ? फिर कुछ बड़ा होनेपर टूटी-फूटी आवाजसे पहिले मा, चाचा, काका आदि कहना सीखा, जिससे माताका मन अतीव प्रसन्न होता है। क्या यह समस्त काम बिना शिक्षाके आ सकते हैं? भूख, चोट और पीड़ाके समय रो पड़ना और माता-पिता अन्य लोगोंके ध्यानको अपनी ओर आकर्षित करना किसने सिखलाया ? इस बातका ज्ञान कि भूख लगनेके समय रोनेसे खानेको मिलेगा, और आहार मिलने-पर तृप्त होकर हाथ-पांव मारकर प्रसन्नता प्रकट करना, किसने सिखलाया था ?

यह जो लाल रूमाल तुम्हारे चार मासके बच्चेके झूलनेपर पड़ा है क्या तुमने देखा है कि बच्चा उसके पकड़नेके लिये कितना हाथ-पांव मार रहा है ? रूमाल वहीं पड़ा है इसमें उठने-का सामर्थ्य नहीं, फिर भी इसका हाथ-पांव मारना क्या इस बात-का पूर्ण सबूत नहीं कि बच्चेके मनमें इच्छा-शक्तिका बीज मौजूद है ? इस समयसे इसके सामने जैसी मूर्ति रखोगी, बच्चा ठीक

उसीके अनुसार शिक्षा प्राप्त करेगा, और इसी समयसे उसके साधु व असाधु होनेका बीज बोया जायगा और बड़ा होकर भला या बुरा बनकर संसारमें दुःख या सुख फैलानेका कारण होगा।

बच्चेके उत्पन्न होते ही उसकी शिक्षाकी नींव स्थापित हो जाती है और सारी उमर उसीपर भला या बुरा शिक्षा-भवन बनता जाता है। मनुष्य जन्मसे लेकर मरणतक शिक्षा-प्राप्तिमें लगा रहता है।

स०—अब मैंने आपके अभिप्रायको समझ लिया, माता-पिताको शिशु-शिक्षाका ज्ञान प्राप्त करना परम आवश्यक है। अब आप इस विषयको पूर्णरूपसे वर्णन करें।

सु०—अच्छा मैं कहता हूं सुनो। इस संसारमें मनुष्य जब किसी पेड़को लगाते हैं तो पहिले उसकी भूमिको देखते हैं, कि यह भूमि कैसी है? उस स्थानकी मिट्टी ठीक है या नहीं? यदि वह भूमि ठीक न हो और उसके पास उस पेड़को लगानेके लिये और भूमि भी न हो तो फिर वह क्या करता है?

स०—वह उसी भूमिको पूर्णरूपसे सुधारता है और उसमें खाद डालता है।

सु०—अच्छा ठीक है, भला यह तो बतलाओ कि यह काम आसान है?

स०—जो यह समझता है कि इस भूमिमें अमुक प्रकारकी

खाद डाली जाय, इस प्रकार इसको गोड़ा जाय आदि, उसके लिये तो आसान ही है पर जो नहीं जानता उसके लिये यह अतीव कठिन काम है।

सु०—अच्छा अब यह सोचना है कि बच्चा किस प्रकार साधु-प्रकृति हो सकता है?

स०—जिस माता-पिताका शरीर स्वस्थ और हृष्टपुष्ट हो उसीकी सन्तान अच्छी हो सकती है।

सु०—क्या तुमने यह नहीं देखा कि बच्चेका रंगरूप प्रायः माता-पिताका सा ही होता है।

स०—हां मैंने सुना है। मेरी माता भी कहती थी, कि तुम्हारे पुत्रका मुख तुम्हारे मुखसा है।

सु०—वैसे ही सन्तान माता-पिताके गुण और अवगुण भी ग्रहण करती है, यह भी समझती हो?

स०—हां यह तो मैंने देखा है। मेरे ही तायाजी बड़े क्रोधी हैं, उनका पुत्र विपिन बाबू बड़ा क्रोधी है और मेरे चाचा बड़े दयालु प्रकृतिके मनुष्य हैं। वे भूखेको भोजन और नंगेको कपड़े देते हैं। उनका पुत्र शिशिर बाबू भी वैसा ही है। एक दिन उसने एक गरीब लड़केको सर्दीसे कांपते देख अपने बदनसे कुरता उतार उसे दे दिया था। जब नंगा घरमें आया और मेरे चाचाजीने यह हाल सुना तो वह बड़े प्रसन्न हुए और उसको बड़ा प्यार किया और आगेके लिये भी उसका उत्साह बढ़ाया।

सु०—यह बात तो बहुत अच्छी है। अब तुम आप ही सोचो

कि किस प्रकारके माता-पिता द्वारा इस संसारमें सन्तानकी भलाई हो सकती है। यदि हम नीरोग और बली हों, बाल्यावस्था से ही सत्यानुरागी और धर्म्मपरायण माता-पिताकी गोदमें पले हों, अच्छी शिक्षा पानेके कारण उनके दोषोंकी ओर ध्यान न देकर, उनके सद्‌गुणोंको ही अपने जीवनमें ग्रहण कर सकें, तो फिर जो सन्तान हमारे गृहमें उत्पन्न होंगी उनके द्वारा ही इस संसारका भला हो सकेगा। मैं तुमको इसी प्रकारके और भी बहुतसे नियम धीरे धीरे समझा दूंगा।

जैसा तुमने शरीर-सम्बन्धी वर्णन किया है, यदि हम नीरोग, पुष्ट और बलवान होंगे तो हमारी सन्तान भी चिर-ञ्जीवी, नीरोग और हृष्टपुष्ट होगी। परन्तु यदि माता-पिता ही दुष्कर्म्मों के प्रभावसे सदैवके रोगी हों; तपेदिक, श्वास और मिरगी आदि संसर्गज रोगोंसे ग्रसित हों तो उनकी सन्तान भी वैसी होगी और यह पुश्तोंतक जानेवाली बीमारियोंसे अवश्य ग्रसित होगी।

अब तुमको उदाहरण देकर समझाऊंगा कि जिस प्रकार सन्तानके शरीरपर माता-पिताके शरीरका प्रभाव पड़ता है ठीक उसी प्रकार सन्तानके स्वभाव, मन और प्रकृतिपर भी प्रभाव पड़ता है।

आशा है, यह तुमको विदित होगा कि इस बच्चेके जन्मसे पूर्व मैंने तुमको बड़ी सावधानीसे जीवन-निर्वाह करनेको कहा था और मैंने आप भी इस ओर बहुत ही ध्यान रखा था और इस

बातका बहुत ही यत्न किया था कि इन दिनोंमें तुम्हारेमें चिड़चिड़ापन पैदा न हो, और न तुमको किसी प्रकारका क्लेश हो और तुम्हारे पढ़नेके लिये उत्तमोत्तम पुस्तकें भी ला दी थीं। क्या तुमको स्मरण है उन दिनों तुमने कौन कौन सी पुस्तकें पढ़ी थीं और उनसे तुमको क्या लाभ हुआ था?

स०—महज्जीवनाख्यायिका, जिसमें एक सत्पुरुषका जीवन-वृत्तान्त था। मैंने उसे बड़े ध्यानसे पढ़ा था। वह पुस्तक बहुत अच्छी थी।

सु०—हां, यदि उस सज्जनके सदृश प्रेम, परोपकार, न्याय और धर्म्म-भाव हमलोगोंकी सन्तानमें आ जावे, तो हमारा जन्म सफल और सार्थक हो जाय। भला बतलाओ तो सही इसके सिवा तुमने और कौन कौन सी पुस्तकें पढ़ी थीं?

स०—ध्रुव और प्रह्लाद-चरित भी पढ़ा था। इनको पढ़ते २ कई वार मेरे अश्रुपात हो गये थे। अहा! ध्रुवकी सरल भक्ति और प्रह्लादके विश्वासकी दृढ़ता कैसी अनुपम है!

सु०—और कौनसी पुस्तक पढ़ी थी?

स०—बुद्धदेव-चरित। इसमें बुद्धदेवजीकी पहिली अवस्थाका वैराग्य और चित्तमें प्रेम-प्रचार, यह दोनों घटनायें तो मेरे हृदयमें ऐसी निवास कर गई हैं, कि जिनको मैं कदापि नहीं भूलूंगी। आपने जो जो पुस्तकें मुझे दी थीं वे मुझको बहुत ही अच्छी लगी थीं और आपकी प्रेरणासे मैं इतने प्रेमसे उनको सोच समझकर पढ़ रही थी कि कई स्थल तो मुझको आजतक कंठ हैं।

सु०—क्या तुम जानती हो कि मैंने यह पुस्तक पढ़नेको क्यों ला दी थीं?

स०—क्योंकि ये पुस्तक बहुत अच्छी और स्त्रियोंके पढ़ने योग्य हैं।

सु०—केवल इसीलिये नहीं, इसमें एक और भी कारण था।

स०—इसके सिवा और क्या लाभ था उसका तो आपने मुझसे वर्णन ही नहीं किया।

सु०—उस समय इसलिये मैंने तुमको नहीं बतलाया कि कहीं साधारण बात समझकर तुम उसपर अधिक विचार न करो, और अपने लिये आवश्यक न समझकर इन पुस्तकोंको भलीभांति न पढ़ो, इसीलिये मैंने असली आशय तुमसे प्रकट नहीं किया, और केवल इन पुस्तकोंके पढ़नेके लिये ही विशेष प्रेरणा की थी।

स०—इन पुस्तकोंके पढ़े हुए भी इतना समय व्यतीत हो गया फिर भी तो आपने कुछ नहीं कहा?

सु०—इस बीचमें मेरे इच्छानुसार मुझे ऐसा अवकाश नहीं मिला और न इस विषयमें वार्तालाप करनेकी उत्कट इच्छा ही प्रकट हुई थी। यदि भारतीय मनुष्य सदैव अपने धर्म्मपर चलने और प्रण पूर्ण करनेके आदी हों और समयानुकूल गंभीर भाववाले हों, तो हम लोगोंके घर स्वर्गधाम बन जायँ। पर हम लोगोंमें निर्बलता, आलस्य, उत्साहविहीनता आदि दुर्बल भाव तो कूट २ कर भरे हैं। इसीलिये तो सब कामोंको ठीक समयपर करनेकी हमारी आदत ही नहीं रही। यही कारण है, कि भारत-

वर्ष आपत्तियोंका घर बन गया है और हमलोग मुर्दोंकासा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। परन्तु अब शुक्र है कि परमात्माने मेरा विशेष ध्यान इधर आकर्षित किया है और अब मुझे अवकाश भी है।

तुमने देखा होगा कि उस दिन जो मैं बहुतसी पुस्तकें लाया था वह सब शिशु-शिक्षा और शिशु-पालनके विषयकी हैं। उनके पढ़नेसे जो विचित्र भाव मेरे अन्तःकरणमें उत्पन्न होता है उसको मैं ही समझता हूं। मेरे पास ऐसे कोई शब्द नहीं, जिनसे मैं उस विचित्र भाव और आनन्दको पूर्ण रूपसे और लोगोंको समझा सकूं।

अब उन पुस्तकोंके पठनने ही मेरे लिये ऐसा विचित्र समय और उत्कट प्रभाव उत्पन्न किया है। अब मैं देखता हूं कि तुम्हारे हृदयमें भी शिशुपालन तथा शिक्षाकी उत्कट इच्छा ईश्वरने उत्पन्न कर दी है, इसलिये इन सब वसूलोंको समझानेका उत्तम समय मुझे प्रतीत हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस समय तुमको समझानेसे मेरा परिश्रम सफल होगा। अब पहले मैं इसका कारण बतलाता हूं कि मैंने यह पुस्तक तुमको पढ़नेके लिये क्यों लाकर दी थी, सुनो।

जिस समय इन पुस्तकोंको पढ़नेके लिये मैंने कहा था उस समय शिशुके (जो कि उस समय तुम्हारे गर्भमें था) स्वभावका बीज रूप प्रभाव (जो कि सारी उम्र इसके जीवनमें बढ़ना था) अङ्कुर रूपसे उत्पन्न हो रहा था और यह ईश्वरीय नियम है कि उस समय जैसा

आचार और स्वभाव माताका हो वैसा ही बीज अङ्कुरित होता है, इसीलिये वे पुस्तकें मैंने तुमको पढ़नेके लिये दी थीं । इन पुस्तकोंमें जिन महापुरुषोंके जीवन-वृत्तान्त लिखे हैं उनके पढ़नेसे उनके सच्चरित्र, उत्तम आचार, स्वच्छ व्यवहारका प्रभाव तुम्हारे अंतः-करणमें अवश्य उत्पन्न हुआ था जिसका भागी वह बच्चा था ।

स०—यह तो आपने विचित्र बात सुनाई, इससे तो जान पड़ता है कि हमारे अपने भले या बुरे होनेसे इस संसारके भला या बुरा होनेका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् माताके भली या बुरी होनेसे संतान भी भली और बुरी उत्पन्न होती है और संतानके भली व बुरी होनेसे यह संसार भी भला और बुरा होता है । यदि मातायें ही बुरी होंगी तो संसारके भले होनेकी कोई आशा नहीं हो सकती । परमात्माने माताओंपर कितनी अधिक जिम्मेवारीका बोझ लादा है पर मैं अपनी बुद्धिकी निर्बलतासे इसे पूर्ण रूपसे समझ नहीं सकती ।

सु०—अब तुम यह तो अवश्य समझ गई होगी, कि स्त्रियोंको सच्छिक्षा प्राप्त करनेकी बड़ी आवश्यकता है । क्या कभी माता-ओंके सच्छिक्षा, सदाचार, सद्व्यवहार प्राप्त किये बिना इस संसारका भला हो सकता है? और धर्म्म-भाव मनुष्योंमें आ सकता है?

स०—जी हां, इतना तो मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि स्त्रियोंके शुद्धाचार आदिसे ही यह संसार शुद्धाचारी आदि हो सकता है और इनके दुराचारी होनेसे यह दुराचारी बनता है ।

सु०—अब समय बहुत चला गया है और मुझे एक आवश्यक कार्य्यके लिये बाहर जाना है। तुमको भी घरका बहुतसा कार्य्य करना है। आज इतना कथन ही बहुत है। अब फिर कभी अवकाश मिलनेपर इस विषयपर वार्तालाप किया जायगा, पर इतना ध्यान रखना कि इस बात-चीतको जो अबतक की गई है भूल न जाना। हमने आज बहुतसे ऐसे विषयोंपर वार्तालाप किया है जिसका याद रखना तुम्हारे लिये परम आवश्यक है।
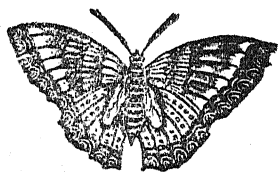
तृतीय परिच्छेद ।

एक सप्ताहतक फिर सरला और सुबोधचन्द्रको इस विषय-पर वार्तालाप करनेका अवसर तो न मिला परन्तु उन दोनोंकी लगन इस ओर बराबर लगी रही और दोनों ही इस विषयमें पूर्ण लाभ प्राप्ति और यथार्थ ज्ञान पानेकी चिन्तामें रहे। उनके हर समय सोचमें लगे रहनेसे उनके जीवनमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया था, मानों उनके हृदयमें इस पवित्र भावका बीजारोपण हो चुका था जिसे फलदायक वृक्ष बनानेके लिये उन्होंने दृढ़ व्रत धारण कर लिया था। इस संसारमें प्रत्येक कार्य्य-विचारमें चिन्ता करते समय चंचलतादि त्याग प्रायः मौनव्रत धारण किये बिना विचार विवेकादि होने असम्भव हैं। इसी नियमानुसार सरला और सुबोधचन्द्रसे भी चञ्चलता, वाचालता, हास्यवृत्ति आदि २ चिरकालके लिये दूर भाग गये थे।

इनकी ऐसी दशा देख सुबोधचंद्रकी वृद्धा माता कहने लगीं, "पुत्र! तुमने यह मौनव्रत धारण कर लिया है और इस युवावस्थामें जो कि हंसने खेलनेका समय है, सब त्याग चिन्तामग्न रहते हो, यह देखकर मुझे अतीव क्लेश हो रहा है। इसका सविस्तर कारण मुझे बतला दो।

पुत्र! प्रत्येक मनुष्य अपनी वृद्धावस्थामें सांसारिक सुखोंसे

विरक्त हो परमार्थ चिन्तामें लग, गुरुदेवके बतलाये मंत्र जप इष्ट-देवके पूजनमें लगते हैं। तुम इसी अवस्थामें सांसारिक सुखोंसे विरक्त हो किस मन्त्रके जपमें लगे हो, यह सब मुझे बतलाओ। तुम्हारी ऐसी दशा क्यों परिवर्त्तन हुई है?"

सु०—माता! हमने एक नवीन मन्त्र धारण किया है। आप आशीर्वाद दें कि उसमें हमको सफलता लाभ हो।

मा०—बेटा! कहो न वह क्या मन्त्र है?

सु०—अच्छा माताजी! जब खान-पान आदिसे निपट हम उस मन्त्रके जापमें लगते हैं, उस समय आप भी कृपा करेंगी तब आप हमारे मन्त्रको भलीभांति जान लेंगी।

खानेके अनन्तर सुबोधचन्द्रके घरमें उसकी माता आ गई और आकर अपनी पुत्रवधूको भी बुलाने लगीं।

स०—माताजी! मैं बच्चेको दूध पिला रही हूं, इसे सुलाकर आती हूं; जिससे यह रोकर विघ्नकारी न हो।

मा०—बेटी! शीघ्र करो न।

स०—माताजी! मैं अभी आती हूं, देर नहीं करूंगी।

मा०—सुबोध! बतलाओ तो कि तुमने ऐसा शान्त स्वभाव और मौनव्रत क्यों धारण किया है?

सु०—माताजी! क्या जाने आप मेरे इस विचारको एक नया विचार समझें, परन्तु मेरी समझमें आपके लिये तो कोई नवीन विचार नहीं। आप भी हमारी इस कामना-पूर्तिके विषयमें सहायता दें।

मा०—पुत्र! जहांतक मुझसे हो सकेगा मैं तन-मनसे प्रयत्न करूंगी।

सु०—माता! मुझे इस विचारने अतीव घबरा दिया है कि मैं किस प्रकार इस बच्चे (आपके पोते) को सुशिक्षित, गुणसम्पन्न, सच्चरित्र, और धर्म्मात्मा बना इस संसारमें रहनेके योग्य बना सकूँ यही चिन्ता मेरे मनमें है और यह कार्य्य मुझे पहाड़ सा ज्ञान पड़ता है, विशेषकर भारतवर्षमें माताओंको इस विषयकी शिक्षा दी ही नहीं जाती जिससे यह अतीव कठिन काम हो रहा है।

मा०—इस देशके पुरुष ही यदि सन्तानको श्रेष्ठ बनाना चाहें तो माता भी बना सकती हैं। पुरुष ही स्त्रीको सुशिक्षित करें, इस विषयमें उसे ज्ञान दें तो माता भी सीखें। वास्तवमें इस बातकी बड़ी त्रुटि है, परन्तु बेटा! तुम इस बालकको भलीभांति लिखा पढ़ाकर सुबोध करा दो इससे यह बाबू बन आपही आप भद्र मनुष्य बन जायेगा। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि बच्चेको मनुष्य बनाना सहज काम नहीं।

सु०—माताजी! विलायतके एक* सुप्रसिद्ध पण्डितका कथन है कि बच्चा पैदा होते ही उसकी एक प्रकारसे शिक्षा आरम्भ हो जाती है। यह बात है भी तो ठीक, कुछ दिनोंका ही बच्चा प्रत्येक वस्तुको टकटकी बांधे देखने लगता है और धीरे २ हर एक वस्तुका ज्ञान उसके मनमें आने लगता है। बच्चोंको यह शिक्षा

---

* Herbert Spencer

माता-पिताकी इच्छापर निर्भर है, बच्चा आकाशके तारोंको देखता है उनका प्रकाश उसे अतीव उत्तम भान होता है, बच्चा जो शब्द सुनता है उसको उच्चारण करनेका अभ्यास करता है और वही दृश्य और शब्दादि इसके हृदय-पटमें बीज रूप धारण करते हैं। बड़ा होनेपर वही विचार बढ़कर मनुष्यको उन्नत तथा अवनत अवस्थामें ले जाते हैं, इसलिये आरम्भसे ही बच्चोंके आगे उत्तमोत्तम ज्ञानदायक वस्तुयें रखनी चाहियें।

मा०—तुम जो कुछ कहते हो सब ठीक है। बच्चा जो कुछ सुनता है और देखता है उसीको सीखता है और वही करता है, इसलिये मातापिताको इस ओर पूर्ण सावधान रहना चाहिये। यह बातें सुनकर मुझे तुम्हारे बाल्यकालकी बात याद आती हैं। तुम छोटी अवस्थामें ही कहते थे कि माता यह क्या है वह क्या है;यहांतक कि मैं दिक हो जाती थी। यदि हजार वस्तुएं भी सामने होतीं तो तुम एक एक करके हर वस्तु पूछे बिना नहीं छोड़ते थे और जबतक तुमको प्रत्येक वस्तु बतला न दी जाती तुम पीछा नहीं छोड़ते थे। सोते समय जबतक तुम एक दो कथा नहीं सुन लेते थे तुम चैन नहीं लेते थे। बाल्यावस्थामें ही तुमको ज्ञान-प्राप्तिकी बड़ी प्रबल इच्छा थी।

उधर सरला बच्चेको गोदमें सुलाये हुए बाहर खड़ी हो अपने पतिकी बाल्यकालकी कथा श्रवण करती रही, और अपने स्वामीकी सासके मुखसे श्लाघा सुन आधा घूँघट निकाले भीतर गई, और बड़ी सावधानीसे स्वामीके मुखकी ओर देखने लगी।

जब स्वामीकी दृष्टि भी इधर पड़ी तो सरला मुसकराने लगी।

सुबोध कहने लगा—"देखो माताजी,आपके मुखसे मेरी बाल्य-कथा सुन यह आपकी स्नुषा हंसती है। हां माताजी! क्या मैं बाल्यावस्थामें बड़ा दुःखदाई बालक था?"

मा०—बाल्यावस्थामें बच्चे चञ्चल प्रकृति हों परन्तु बड़े होकर साधु-प्रकृति हों। तुम बड़े ही चञ्चल थे, तुम घरमें सदा नाचते कूदते थे, हमारे कहनेको सुनते नहीं थे, हटानेसे हटते नहीं थे। तुमको मनुष्य बनानेके लिये हमें बड़ा यत्न करना पड़ा था।

सु०—अच्छा माताजी! मुझको मनुष्य बनानेके लिये जो विचार आपके मनमें आते थे और जो उपाय आपने किये थे यदि कुछ स्मरण हों तो वह भी मुझको सुनायें। हम भी वही सब उपाय करें।

मा०—क्या आजतक वह मुझे याद हैं? मैं तो तुम्हारे विचार तुमसे सुनने आई हूं, तुम मुझसे पूछते हो। मुझे अब कुछ याद नहीं, अब जो तुमने सोचा है वह कहो।

चतुर्थ परिच्छेद ।

मा०—इस संसारमें जैसे प्रत्येक मनुष्यके घर बालक होते हैं वैसे ही तुम्हारे भी होंगे। यह स्पष्ट देखनेमें आता है कि जिस घरमें जैसा आचार, व्यवहार, वार्तालापादि होता है बच्चा वह सब सुगमतासे सीख लेता है। कई बार देखनेमें आया है कि एक दूकानदारका बालक छोटी ही आयुमें दूकानदारीके सब काम अपने खेलमें करने लगता है। किसानका बालक बनावटी हल आदि बना खेत जोतनेकी क्रीड़ा करता है। हमारे पुरोहितका ३ वर्षका पुत्र कई बच्चोंको साथ ले पुरोहिताईका खेल खेलता है और अपने पिताके समान ही पूजाका आसन बगलमें दबाकर घूमता फिरता है। इन बातोंसे स्पष्ट जान पड़ता है कि बालक घरमें जो कुछ माता-पिताको करते देखता है वही सीखता है।

सु०—निस्सन्देह यह ठीक है। इसीलिए माता-पिताको सुशिक्षित और शुद्धाचारी होना अत्यावश्यक है। यदि हम ही भले न होंगे तो हमारा यह बच्चा भला कैसे हो सकता है?

मा०—पुत्र! यह ठीक है। यदि हम ही भले नहीं तो हमारी सन्तान कैसे भली हो सकती है? तुम्हारे शिशुकालमें जो २ विषय मैंने देखे थे जिनसे तुमको आज ऐसी दशामें देखती हूं मैं कुछ २ कहती हूं सुनो। जब तुमको कुछ समझ आने लगी थी
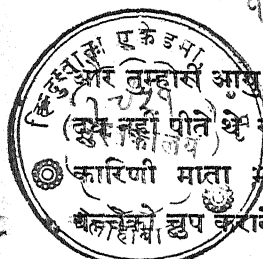
और तुम्हारी आयु अभी ६ मास हीकी थी, तो जब कभी तुम (दूध नहीं पीते थे या रोने लगते थे तो दास-दासियें वरंच मंगल-कारिणी माता भविष्यत् परिणामकी ओर ध्यान न देती हुई बालकोंको चुप करानेके लिये कहती थी कि वह "जूजू" (हौआ) आया। इस प्रकार मातायें सुकुमार शिशुके निर्भय अन्तःकरणमें भयका बीज बोती हैं। बनावटी हौआसे बच्चेमें खेल, बल, और आत्म रक्षाके सब भाव नष्ट हो जाते हैं, बालकका शुद्ध चित्त हौएके भयसे मलिन हो जाता है, और ज्ञानोदयसे पूर्व ही हौआ उसकी ज्ञान-शक्तिको नष्ट कर देता है।

सु०—माताजी! आप ठीक कहती हैं। मैंने भी कई माताओंको ऐसा करते अपनी आंखों देखा है। ऐसा करनेसे बच्चेका साहस और विक्रम नाश न हो तो और क्या हो? भविष्यमें ऐसी कुशिक्षायें कई प्रकारकी हानियां उत्पन्न कर देती हैं। ऐसी शिक्षाओंसे बच्चोंके जीवनमें मिथ्या प्रवंचना (झूठ और ठगी) आदिका बीज बोया जाता है।

मा०—दूध देते समय जब मेरी सास "हौआ आया कहती" थीं तो मैं उन्हें कहती थी "माताजी! आप ऐसा कहकर इस बच्चेको सचमुच हौआ बना देंगी। कृपा करके इस कुमारको ऐसा न कहा करें।"

सरला कुछ आगे बढ़कर धीरे २ साससे कहने लगी—"माता-जी! मैंने तो बहुत दिनोंसे यह अभ्यास छोड़ दिया है। मैं समझ चुकी हूं कि ऐसा करनेसे बच्चेपर भयानक प्रभाव पड़ता है।"

माता और पुत्र ।

मा०—हमारी अज्ञानतासे बच्चोंमें कई प्रकारके नुक्स उत्पन्न हो जाते हैं। अब उस अज्ञानताके दूर होनेपर उनके दूर करनेसे ही बड़ा सुख हो सकता है। केवल इतना ही नहीं वरंच हमारे ही नाना प्रकारके दोषोंसे जिनको मैं एक २ करके बतलाती हूं, हमारे ही आचार-व्यवहारसे सन्तानपर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है। सुनो, जब बच्चा किसी वस्तुके पानेके लिये जिद्द करता है और रोने लगता है तो उसको आकाशके चांद, वनके हरिण, राजाके हाथी घोड़ों आदि २ का प्रलोभन दे चुप कराते हैं। अज्ञानी मातायें यह नहीं समझतीं कि इससे बच्चेके मनपर क्या प्रभाव पड़ता है। उस वस्तुके न देनेसे बच्चोंके मनसे विश्वास उठ जाता है।

सु०—माताजी ! आप ठीक कहती हैं,यही व्यवहार एक वार हमारे एक माननीय महाशयके घर हुआ था। एक दिन उनकी नौकरानी बच्चेको उसे मिठाईका लोभ देकर चुप करा रही थी, जिससे बच्चा आंखें पोंछकर चुप हो गया था, परन्तु उस चतुर सेविकाने फिर मीठी २ बातोंसे उसे फुसला लिया था। यह सब हाल गृहपति देख रहा था। थोड़े कालके पीछे दासीको बुलाकर मेरे सामने कहा था, कि तू हमारे लिये बड़ी हानिकारक है। क्या तू इसी तरहसे हमारी संतानको बिगाड़ेगी ? दासी सुनकर चकित हो चुप सी रह गई, फिर धैर्य्य धार कहने लगी कि "महाराज ! मैंने तो कोई ऐसा कार्य्य नहीं किया"। तब गृहस्वामीने उसे सारा हाल सुनाकर कहा, कि इससे तू हमारे

बच्चेको मिथ्यावादी, ठग और ढीठ बनानेकी शिक्षा देती है। इससे बढ़कर तुम हमारी और क्या हानि करोगी ? गृहस्वामीने पैसे देकर उसको मिठाई लाकर बच्चेको देनेकी आज्ञा दी।

मा०—बेचारी सेविकायें तो यह भाव समझ नहीं सकतीं, भला क्या मातायें भी इन गूढ़ भावोंके तावको जानती हैं ? नहीं, कदापि नहीं, तुम्हारे साथ इन बातोंके करनेसे मुझे कई पुरानी बातें याद आती हैं, तुमको न जाने इन बातोंके देखनेका समय मिला है या नहीं, परन्तु मुझे तो कई वार ऐसा देखनेका अवसर प्राप्त हुआ है। जब कोई मनुष्य घरमें बुलाने आता है और उससे मिलनेकी इच्छा न हो, तो पिता ही पुत्रको कहता है, "कह दो कि पिताजी घरमें नहीं हैं।" इससे बालकको यह शिक्षा मिलती है कि झूठ बोलनेसे कोई हानि नहीं। इसी प्रकारकी कई घटनायें नित्य बालकोंके सन्मुख होती हैं। अब विचारणीय विषय है कि ऐसा होनेपर किस प्रकार आशा की जा सकती है, कि बालक सत्यवादी हो।

स०—कई वार देखा गया है कि जब किसी वस्तुकी आवश्यकता होती है और पड़ोसीसे लेनेकी आवश्यकता पड़े तोभी बिलकुल मिथ्या-भाषण ही किया जाता है। यदि नमक न हो तो कहती हैं कि रत्ती भर नमक दें। ऐसा कहना झूठ समझा ही नहीं जाता।

सु०—जैसे माता-पिता होते हैं उनकी सन्तान भी प्रायः वैसी ही होती है। जहां कहीं इससे विपरीत अर्थात् धर्म्मात्मा

सज्जन पुरुषोंकी सन्तान उनसे विपरीत गुणोंवाली होती है, उसके भी विशेष कारण होते हैं।

मा०—कई वार देखा गया है कि माता-पिता सुकुमार शिशुकी आशा पूर्ण करनेका पूर्ण प्रयत्न करते हैं, उसकी अनहोनी बातको भी पूर्ण करना चाहते हैं। परन्तु सुबोध माता-पिता यह किस प्रकार कर सकते हैं?

स०—ठीक है, मेरे मामी-मामाजी भी ऐसा ही करते थे। उन्होंने अपने एक बच्चेको इसी प्रकार नष्ट कर दिया था। उसने लिखना पढ़ना कुछ भी नहीं सीखा था। केवल लोगोंका अपकार ही करता था। कोई मनुष्य चाहे कैसी ही बात करे, वह उसीसे छलकर लड़ाई झगड़ा आरम्भ कर देता था।

मा०—यह भी देखा गया है कि जहां स्त्री-स्वामीका परस्पर विवाद रहता है, उनकी सन्तान माता-पितासे निर्भय हो जाती है। वरंच जब वह देखता है कि माता-पिता आपसमें गाली गलौज निकालते हैं और एक दूसरेका मान भंग करते हैं तो वह भी उनका अपमान करनेको बुरा नहीं समझता। इसलिये सरला! तुमको इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि परस्पर वादविवाद कभी न किया करो।

सु०—मैंने एक अपने सम्बन्धीसे सुना था, कि एक निर्धन पुरुषने एक कुरता अपने पुत्रके पहननेके लिये ले दिया था। उसे देख पुत्रने कहा कि मैं ऐसे मोटे और भद्दे कपड़ेकी कमीज नहीं लूंगा; मुझे अमुक बालककीसी कमीज ले दो। पिताने उसे सम-

झाया कि "बेटा! उसके पिता धनी हैं, मैं निर्धन हूं, मेरी और उसकी अवस्थामें बड़ा भेद है।" उसी समय उसकी स्त्री अपनी सांसारिक अवस्था भूल पुत्रसे कहने लगी, "ठीक है, तुम वैसी ही कमीज मंगवाओ, अवस्थासे तुम्हें क्या करना है।" यह सुन पिताने कहा, कि बालककी कुशिक्षा और इसकी अधोगतिकी तुम्हीं कारण हो। मैं अपनी दशानुसार इससे बढ़िया कपड़ा नहीं ला सकता। तुम इसको उकसाकर इसे चपल और दुरात्मा बनानेका प्रयत्न करती हो। तुम्हीं इसको नष्ट करने और घरमें अशान्ति फैलानेका कारण हो। तुम्हारे ऐसे पक्षपात करनेका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। इस प्रकार यह बालक पहिले मेरी आज्ञा पालन करनेसे पराङ्मुख होगा और फिर तुम्हारे कहनेमें भी न रहेगा। इसलिये मैं तुमसे कहता हूं, कि इस प्रकारका पक्ष लेना छोड़ दो। माताओंके ही पक्षपातसे भारतकी सन्तानें नष्ट हो रही हैं। तब पिताने पुत्रसे मीठे वचनोंमें कहा, "पुत्र! अब तुम यही पहन लो, फिर मैं तुमको इससे उत्तम और ले दूंगा।" तब बालकने कमीज पहन ली।

मा०—यह जो तुमने कहा है मुझे अतीव उत्तम कथन प्रतीत होता है और वह पुरुष वास्तवमें बड़ा बुद्धिमान् था।

सु०—हां माता! वह पुरुष वास्तवमें अतीव बुद्धिमान् था।

मा०—इस समय मुझे भी दो घटनायें याद आ गई हैं, बूढ़े मनुष्य पुरानी बातोंको खूब याद रखते हैं।

एक पुरुषका पुत्र यदि साधु-स्वभाव और शान्त-स्वभाव

हो, और उसकी माता यदि उसकी अत्यन्त श्लाघा करे तो वह अल्प-बुद्धि बालक, तथा जो कन्या गणितमें कुछ योग्यता रखती हो और उसके माता-पिता उसको लीलावती आदिसे उपमा दें, तो वह कन्या अवश्य ही उन्नति नहीं कर सकेगी।

सु०—तो क्या बच्चोंके उत्तम कार्य्य करनेपर उनकी प्रशंसा करनी उचित नहीं? भला उनकी उत्साह-वृद्धि फिर कैसे हो?

मा०—नहीं नहीं, मैं यह तो नहीं कहती कि उनके उत्साहको न बढ़ाया जाये। उनके उत्तम कार्य्यको देख उनसे प्रेम प्रकट कर उत्साह अवश्य बढ़ाना चाहिये और उनमें सद्भाव उत्पन्न करनेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। मेरे कहनेका यह भाव है कि बच्चोंकी बड़ाई उनके मुखपर नहीं करनी चाहिये। और यह भी स्मरण रहे कि जिस घरमें लड़ाई-झगड़ा रहता है, उस घरकी सन्तान कदापि सुशिक्षित और साधु-स्वभाव नहीं रह सकती। जिस घरमें माता लड़ाई-झगड़ा करनेवाली, कटु-भाषिणी हो तथा अपने भर्त्ताको अत्याचारी, ढीठ, राक्षस आदि २ शब्दोंसे पुकारे तो उस माताकी सन्तान कदापि मनुष्य नहीं बन सकती।

सु०—माता! आप यह ठीक कहती हैं। मुझे इस विषयका पूर्ण अनुभव है। जब मैं उत्तर अंचलमें काम करता था तो मुझे बहुतसे मनुष्योंसे बातचीत करनेका अवसर मिला था। उनमसे एक मनुष्य अत्यन्त अश्लील भाषण करता था। कई बार मैंने उसे भिड़का भी परन्तु वह अपनी आदत नहीं छोड़ता था। मेरा विचार हुआ कि यह किस पाठशालामें पढ़ा है और कहां

पला है । मैंने उसके घरकी दशा जानकर—मैंने ही नहीं अन्य साथियोंने भी—उसे बहुत ही झिड़का । तब उसने एक मित्रसे कहा—"भाई ! यदि फिर आप मुझे वैसा कहते सुनना, तो मेरे गालोंपर दो थप्पड़ लगा देना ।" फिर कुछ कालके अनन्तर उसके सम्बन्धियोंने कहा कि "इसमें आगेसे बहुत परिवर्त्तन हो गया है ।" फिर वार्त्तालापमें उसने कहा कि भाई इसमें मेरा क्या दोष है ! मैं तो बहुत यत्न करता हूं, परन्तु मेरा बाल्यावस्थाका स्वभाव दूर नहीं होता । जब मैं बहुत छोटा था तो मेरे माता-पिता, बड़ी बहिन तनिकसी बातपर क्रोधान्ध हो अश्लील भाषण करते थे । उनको देखकर ही मेरा भी स्वभाव ऐसा ही हो गया है । निस्सन्देह जिस परिवारके लोगोंकी यह दशा हो उस घरकी संतान ऐसी न हो तो और कैसी हो ।

मा०—और एक विशेष कथा है । बाल्यावस्थामें बच्चे कैसे बालकोंके साथ खेलते हैं माता-पिताको इस विषयमें अधिक ध्यान रखना चाहिये । यदि बच्चोंको न रोका जावे और वे दुष्ट-प्रकृति बालकोंके साथ खेलें, तो निस्सन्देह वह बच्चे स्वयं दुष्ट-प्रकृति हो जायेंगे । मैंने इस बातपर बड़ा ध्यान रखा था, तभी तो मैं तुम्हारे जैसे पुत्रकी आज माता बनी हूं ।

सु०—माता ! यह जो आप कहती हैं, निस्सन्देह यह अतीव आवश्यक है । इसी विषयमें इङ्गलैंडके एक सुप्रसिद्ध विद्वान्‌का कथन है—"ऐसी माताके होते हुए बच्चा कभी सुशील नहीं हो सकता जो प्रतिक्षण बच्चेको झिड़कती रहे और दूध पिलाते

समय उसकी इच्छा न होनेपर भी उसे जबरदस्ती दूध पिलाती रहे। ऐसे पिताकी सन्तान कदापि सुशिक्षित नहीं हो सकती जो यदि किसी बच्चेका हाथ दरवाजेके बंद करते समय उसमें चिप जाये और वह पीड़ासे चिल्लाता हो और पिता उसको निकालनेके स्थान अथवा उसके इलाजके स्थान, उसे झिड़कने लगे। यह तो सामान्य बात है। इसी प्रकार यदि कोई बच्चा खेलता २ गिर जाये और उसके हाथ या पांव टूट जायें और वह घरमें उसी दुःखसे दुःखित होकर आवे और माता-पिता उसकी पट्टी आदि करानेके स्थान उसे और भी झिड़कने लगें तो माता-पिताके ऐसे बर्त्तावको देख संतानके हृदयमें उनके लिये तनिक भी आदर सत्कार नहीं रह सकता और न वह बालक सुशिक्षित और सुशील बन सकता है।"

ऐसे माता-पिता इस संसारमें बहुत हैं और उनकी संतान भी धृष्ट और उजड्ड होती है।

यदि सन्तान आनन्दपूर्वक समयपर खेलकूदमें लगी हो तो माताको प्रसन्न होना चाहिये, परन्तु आजकल देखनेमें आता है कि बच्चोंको खेलनेसे बलात्कार रोका जाता है और उनको चुपकेसे बैठनेका अनुरोध किया जाता है। यह भी ठीक नहीं,इससे चञ्चल-प्रकृति, क्रीड़ा-प्रिय पुत्रके हृदयमें भयानक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है।

बच्चे जब कहीं रेलमें यात्रा करनेको जाते हैं तो वह प्रायः खिड़कीमें बैठकर बाहरके दृश्यको देखनेको झांकते हैं। उस

समय उनको बुरी तरहसे रोका जाता है। इससे भी उनके मनमें बहुत बुरा असर उत्पन्न होता है।

मा०—तुमने यह विलायतकी बातें कथन की हैं। हमारे देशमें भी ठीक यही चाल है। तुम तो गोपाल बाबूको जानते होगे। एक बारका वृत्तान्त है कि यह खेलता २ गिर गया और इसके सिरमें बड़ी चोट लगी और रुधिर बहने लगा, ऐसी दशामें जब घर आया तो इसके पिताने उसे ऐसा मारा कि बेचारा कठिनतासे बचा। बहुत लोगोंने उसके पिताको गाली दी।

सु०—माताजी! आपने ठीक कहा है। माता-पिताके निष्ठुर व्यवहारसे सन्तान बड़ी कुशिक्षा प्राप्त करती है।

पंचम परिच्छेद ।
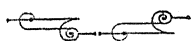
इस प्रकार एक सप्ताह और व्यतीत हो गया। रविवारके दिन भी सुबोधचन्द्रजी एक मित्रके यहां निमन्त्रणमें चले गये। माताको भी किसीके यहां बिरादरीमें जाना पड़ा। सुशीला अतीव चिन्तित हो रही थी। वह सोचती थी कि आजका दिन व्यर्थ गय। सायंकालको जब सब आ गये तो माताने सुबोधचन्द्रको शिशुशिक्षाके विषयमें वार्तालाप करनेके लिये कहा।

स०—माताजी! उस दिनकी वार्तालापसे विदित हुआ था कि हमारे ही दोषोंसे हमारी सन्तान मनुष्य नहीं बन सकती। आपने ही कई एक प्रमाणोंसे बतलाया था कि हम आप ही सब तरहसे अपनी सन्तानको बिगाड़नेके कारण बनते हैं। इस विषयमें आप और भी कुछ कहेंगी?

सु०—आप क्या कहती हैं मेरी शिक्षाके अभावसे ही मेरी यह दशा हो रही है? बहुतसे परिवारोंमें पूर्ण ताड़ना न होनेके कारण बच्चे सुशील और मनुष्य नहीं बन सकते। माता-पिताको भी ज्ञान नहीं होता कि बच्चोंकी देखभाल किस प्रकार करनी चाहिये। जितना परिश्रम आपने किया है उसका परिणाम एक मात्र इतना ही हुआ है कि मैं मनुष्य बना हूं। परन्तु मेरे जैसे मनुष्य, जन-समाजके गौरवका कारण नहीं बन सकते। आपकी शिक्षासे मैं

जन-समाजको दुःखदाई नहीं बना, मैं मन्द कर्म्म नहीं करता, क्या यह कोई बड़ी बात है ? मनुष्य होकर पशुसमान काम नहीं करता यह कोई गौरवकी बात नहीं।

स०—मन्द कर्म करके निन्दाका पात्र न बने यह भी बड़ी गौरवकी बात है। वह अवश्य ही प्रशंसाके योग्य है।

सु०—मन्द कर्म्म न करने और मनुष्यत्व लाभ करनेमें बड़ा भेद है। साधु प्रकारसे अपना जीवन निर्वाह करनेसे जन-समाजको कोई लाभ नहीं पहुंचता, आप उन्नत अवस्था प्राप्त कर सकता है यह अन्य बात है। मेरे जैसे मनुष्य यह प्राप्त नहीं कर सकते इसीलिये मैं ऐसा कहता हूं।

स०—उस दिन माताजीने कहा था कि "बच्चा जो वस्तु देखता या सुनता है उसके आश्रय और अन्य उच्च २ कामोंको करने लग जाता है" इस बातका यथार्थ भाव मेरी समझमें नहीं आया।

सु०—यदि एक सुन्दर फूल बच्चेके आगे रक्खें या यदि कहीं बाजा बजता हो या कोई जाता हो तो बच्चा कैसा दत्तचित्त होकर देखता और सुनता है यह तुमने कई वार देखा होगा। बच्चेके उत्सव समय गायन होता है यह सब देशोंमें चाल है। इसका यह आशय है कि बच्चे संसारके अनेक प्रकारके पदार्थों और व्यापारोंका ज्ञान प्राप्त कर लें। माता-पिता और अन्य सम्बंधियोंके गुण बच्चेमें प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित होते रहते हैं। माताकी गोदीमें ही बच्चा वाटिकाका फूल, आकाशके तारे और चन्द्रमा

तथा सूर्य्यकी किरणें टकटकी बांधे देखता रहता है। उस समय भी वह उनके तत्व-चिन्तनमें लगा रहता है।

यह ब्रह्माण्डके समस्त पदार्थ उसकी नित्य शिक्षाके साधन हैं। इन्हींसे प्राचीन-कालिक बड़े बड़े ऋषि-मुनियों और आधुनिक न्यूटन प्रभृति महापुरुषोंने शिक्षा प्राप्त की है। बचपनकी ज्ञान-प्राप्तिकी लालसाने ही युवावस्थामें इनको संसारमें प्रतिष्ठा-प्राप्तिका सौभाग्य प्रदान किया है। क्या अब समझमें आया ?

स०—हां, यह तो अब मेरी समझमें आ गया। अब आपको आगे जो कुछ इस विषयमें कहना है उसे कहना आरंभ कीजिये।

सु०—बहुत कुछ कथनीय है, सुनिये। इस लोकमें प्रायः माता-पिताको छोटे बच्चोंसे तुमने यह कहते सुना होगा कि "यदि तुम बाल्यावस्थामें मन लगाकर न पढ़ोगे तो निर्वाह कैसे करोगे। यदि १० रुपये कमाओगे नहीं तो रोटी कैसे खाओगे।" शुद्धाचारी, ज्ञानी, देशभक्त, धर्म्मात्मा बननेका कभी कोई अपनी संतानको उपदेश नहीं करता, इसी बातने हमारे देशका अधःपतन कर दिया है। शिक्षित व्यक्ति धनोपार्जन कर लोकयात्रा क्या नहीं कर सकता? खेद तो यह है कि भारतनिवासी विद्या-प्राप्ति भी एकमात्र धनोपार्जनार्थ ही कराते हैं। विद्या ज्ञानादि-प्राप्तिके लिये पढ़नी चाहिये यह बात किसीके भी विचारमें नहीं आती। यह भी मुख्य कारण है कि आजकलके लोक शुद्धाचारी, ज्ञानी, राजभक्त, देशभक्त आदि २ बननेमें दत्तचित ही नहीं होते और परोपकारादिकी ओर ध्यान ही नहीं करते, एक-मात्र स्वार्थपरायण बने रहते हैं।

तुमने यह भी देखा होगा कि बच्चोंको अतीव छोटी अवस्थामें बड़ी कठोर रीतिसे शिक्षा दी जाती है,यह कदापि उचित नहीं। कई माता-पिता सामान्य दोषपर बच्चेको बड़ा भारी दंड देते हैं और बड़े २ कसूर देखकर चुप रहते हैं, यह बात भी बड़ी भारी हानिकारक है। इस तरहसे बच्चे पापाचारी हो जाते हैं। इसलिये माता-पिताको इस बातपर अधिक ध्यान रखना चाहिये। सुबोध-चन्द्र सरलाको खिन्न और चिन्तातुर देख कहने लगे—"तुम इतनी चिन्तातुर और खिन्न क्यों होती हो, जो कुछ तुमने सुना है उसका तुमको अनुसरण करना चाहिये और साथ ही साथ और भी उत्तमोत्तम पुस्तक इस विषयकी तुमको पढ़नी चाहिये और तदनुसार कर्तव्य-पालन करना चाहिये। और यह भी स्मरण रहे कि यदि हम इस विषयमें अतीव तीव्र इच्छा रखकर प्रयत्न करेंगे तो परमात्मा हमारी मनोकामना अवश्य पूर्ण कर देंगे।

छठा परिच्छेद।

सा०—आज और कोई विशेष कार्य नहीं,आज तो शिशुशिक्षा विषयक अधिक वार्त्तालाप होगा।

सु०—अच्छा आज मैं हर्बर्ट स्पेन्सर साहिब जोकि यूरोपके सुप्रसिद्ध दार्शनिक पंडित हैं उनके विचार प्रकट करता हूं, सुनो। वह पूछते हैं कि यदि बच्चा खेलता २ गिर पड़े या छुरीसे अंगुली काट ले तो तुम क्या उसको उस क्रीड़ासे जो उसको अतीव प्रिय है रोकोगी और दण्ड दोगी?

स०—अवश्यमेव ऐसी क्रीड़ासे उसको रोका जायेगा और मेरी समझमें उसकी ताड़ना की जानी चाहिये।

सु०—नहीं, उनका कथन है कि न तो खेलसे रोकना चाहिये और न उसकी ताड़ना करनी चाहिये; क्योंकि यदि चाकूसे हाथ कट गया है तोभी उसको स्वयं शिक्षा मिल गई है और यदि खेलमें क्लेश हुआ है तो भी उसको स्वयं दण्ड मिल गया है। फिर उसको रोकने या ताड़ना करनेसे क्या लाभ है?

स०—सामान्य कार्य्यमें तो उसे रोकना चाहिये। भला यदि बच्चा एक कागज लेकर उसको दीपकसे बाले जिससे उसके प्राणोंका भी भय हो तो फिर क्या उसे रोकना या ताड़ना न चाहिये?

सु०—हां, फिर भी उसको रोकना या ताड़ना न चाहिये।

उस समय माता-पिताका यह कर्त्तव्य है कि इस बातको साव-धानीसे देखें कि कहीं वह अपने वस्त्रोंमें आग न लगाये। मेरे एक मित्रने कहा था कि मेरा सुकुमार बालक दीपकसे खेलना बड़ा पसन्द करता था। मैं एक वार उसके संग हो उसको दीपकके पास ले गया। उसने जब मेरी अङ्गुली दीपककी लौके निकट की तो मैं चिल्लाने लगा। यह देख बच्चा चकित हो गया और वह मेरी आंखें पोंछने लगा, फिर उस दिनसे उसने दीपकसे खेलना छोड़ दिया। झिड़कनेसे विधिपूर्वक समझाना अतीव लाभ-दायक है।

स०—बच्चा यदि न माननेवाला या हठी हो तो माता-पिता मारे न तो और क्या करे?

सु०—झिड़कने या मारनेसे जो अपकार अर्थात् जो बुरा असर बच्चोंके दिलपर पड़ता है यदि तुम समझ लो तो फिर कभी बच्चोंको मारनेका नाम न लो।

स०—अच्छा, यदि कोई बालक किसीके घरमें जाये और वहांसे कोई वस्तु विना पूछे उठा लाये अर्थात् चुरा लाये तो फिर भी उसे दण्ड देना न चाहिये?

सु०—मैंने अपने एक मित्रसे सुना था कि एक वार वह किसी अपने सम्बन्धीके यहां अपने बालकको साथ लेकर गया। जब तीन चार दिन रहकर वापस आने लगा तो उसका पुत्र उसके बच्चोंके खिलौने विना सूचना छिपाकर उठा लाया। पिताको जब विदित हुआ तो उसने पूछा—"यह खिलौने तुमने

कहांसे लिये हैं ।" पुत्रने कहा—"उन सम्बन्धियोंने मुझे स्वयं दिये थे ।"

कुछ कालके अनन्तर वहांसे चिट्ठी आ गई कि आपके जानेके अनन्तर जब खिलौने देखे तो वहां नहीं मिले । जब उसे ज्ञात हुआ कि पुत्र उनके खिलौने चुरा लाया है तो उसने वह सब खिलौने देकर पुत्रको भेजा और कहा कि यह सब उनको दे आओ और उनसे क्षमा मांगो । पहिले तो वह न माना परन्तु अन्तमें उसे जाना पड़ा । पुत्रने रोते हुये वह सब खिलौने घरके स्वामीके आगे रख क्षमा मांगी । उन्होंने उसे क्षमा दे एक पत्र लिखकर दिया और उसे भेज दिया ।

स०—यदि पुत्र न माननेवाला हो तो फिर क्या करना उचित है ?

सु०—पिताको ऐसी दशामें उचित है कि आप उसके साथ जाये और क्षमा मंगाये और उसको उसके कर्त्तव्यके फलाफल समझाये । पुत्र जब देखेगा कि पिता किसी प्रकारके अन्याय (पाप) कर्मको पसन्द नहीं करता तो अवश्य उसे भी वैसा ही करना पड़ेगा ।

स०—यह उपाय तो अतीव सहज और सुखदायी है परन्तु हमारे देशमें लोग ऐसा कब करते हैं ?

सु०—लोग ऐसा नहीं करते यही तो क्षोभका विषय है । बालकोंके झिड़कने और मारनेसे जो हानि होती है यदि वह समझें तो ऐसा कदापि न करें ।

स०—बालक यदि सयाना हो और उसे एक वार झिड़का या पीटा जाये तो फिर क्या हानि है ?

सु०—उसके मनका उत्साह और तेज नष्ट हो जाता है, आलस और भीरुता उसमें आ जाती है। वार वार ऐसा करनेसे बालक नितान्त हीन और पशु समान हो जाता है। तुमने देखा नहीं कि पराधीनता युवा मनुष्योंको भीरु बना देती है और उनके मनुष्यत्वको नष्ट कर देती है। अच्छी प्रकारसे समझ लें कि बालकको भी ठीक यही दशा हो जाती है।

स०—तो फिर क्या बच्चा जो करना चाहे करे, उसे किसी भी कामसे रोकना नहीं चाहिये ?

सु०—हां, बालक जो चाहे करे परन्तु हमको शासन करते रहना भी उचित है।

स०—बहुत ठीक, पर बालक इच्छानुसार चले और माता-पिता शासन भी करें यह दोनों परस्पर विरोधी बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं ?

सु०—शासनका अर्थ तुम क्या समझती हो ?

स०—माता-पिता अपनी इच्छानुसार पुत्रको चलाये। यदि वह वैसे न चले तो उसको निज इच्छानुसार चलानेका नाम ही शासन है।

सु०—बहुत ठीक, तुम और हम भी अपनी अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करते हुए आपसमें अपने अपने इच्छानुसार काम करना चाहते हैं या नहीं ? परन्तु यह मैंने कई वार किया है कि तुम्हारी

स्वाधीनताकी रक्षा करते हुए अपने इच्छानुसार तुमसे कार्य्य करा लिया है। किसीकी स्वाधीनताकी रक्षा कर उससे निज इच्छा-नुसार कार्य्य करा लेनेसे उपकार ही होता है, तनिक भी अपकार नहीं होता।

स०—अब मैं समझ गई कि आप पूर्ण रूपसे समझाकर मुझे ऐसे स्थानपर ले आये हैं कि जिसके चारों ओर सुख ही सुख है।

सु०—यही सुखदायक नहीं—किन्तु गूढ़ प्रेम ही मनुष्यको अपना बना देता है। प्रेमसे ऐसा कोई कार्य्य नहीं जो मनुष्य न करा ले। तुमने देखा होगा कि जो मनुष्य बच्चेके नाचने और हंसनेका आदर करता है बच्चा दूरसे ही उसे देख हंसता है और भुजा फैलाकर उसके निकट आना चाहता है। बच्चे जैसे प्रेमके अधीन होते हैं वैसे और कोई नहीं। इसीलिये बच्चोंको उनके इच्छानुसार चलने देना चाहिये परन्तु गुप्त रूपसे हमारी दृष्टि उनपर सदैव रहनी चाहिये। जब वह हमारी ओर देखे तो उसे ज्ञात होना चाहिये कि प्रेम, ममता और भली चाहनाका प्रवाह उसकी ओर बहता चला आता है। इससे सम्बन्ध और अपनापन स्थिर होता है और बच्चेको जो कुछ कहा जाये तुरन्त वह वही करनेको उद्यत होता है। इस प्रकार उसकी तनिक हानि नहीं होती वरंच उसमें मनुष्यत्वकी वृद्धि होती है।

स०—अब मैं समझ गई कि स्नेह, प्रेम और ममतासे शासन करना ही यथार्थ शासन है। इसीसे बच्चा मनुष्यत्व लाभ करता है।

सु०—इस प्रकारका सुन्दर शासन ही बच्चेको मनुष्य बनाता है। याद रक्खो कि बालकके वार वार हठ करनेसे जिसको क्रोधवश अभिमान और अहंकार उत्पन्न होता है, उसे इस प्रकृतिको रोकना चाहिये। उसे गंभीर बनना, मनको रोकना तथा विधिंपूर्वक शिक्षा देना, और सावधान रहना उचित है। इसीसे बच्चेको उपदेश देना और सुशिक्षित बनाना आवश्यक है।

स०—कृपया इन गुणोंको पृथक् पृथक् समझाइये, मेरी इस आशाको भंग न कीजिये।

सु०—मैं तुमको निराश किस लिये करूंगा, समय २ पर सुनानेके लिये मुझे निराश न होना पड़े; क्योंकि भोजनादि बनानेका भार तुमपर है। उधर मेरा दफ्तरका समय हो जाता है इसलिये मैं दाल भातकी शीघ्रता करता हूँ, उधर वस्त्र बदलनेकी शीघ्रता होती है, उधर एक भिखारी द्वारपर भिक्षा मांगता है, उधर ढाई वर्षका बच्चा अड़ी करके तुम्हारा अंचल खींचता है या कोई सुन्दर वस्तु ले तुमको दिखलाना चाहता है, ऐसी अवस्थामें तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है? प्रायः ऐसी दशामें मातायें क्षुभित हो निरपराध बालकको मारने लगती हैं। परन्तु ऐसी दशामें भी बालकको कुछ खानेको देना, उसकी बात प्रसन्नतापूर्वक सुननी कोई सहज बात नहीं। ऐसी प्रकृति बनानेके लिये माताओंको पूर्ण शिक्षा और गंभीरता प्राप्त करनेकी आवश्यकता है।

सातवां परिच्छेद।

—※—

इस प्रकार उक्त विषयपर बातचीत करते करते महीनेसे भी अधिक काल हो गया परन्तु ७ या ८ वार ही सुबोध और सरलाको इस विषयमें बातचीत करनेका अवसर मिला। अब बड़े दिनोंकी सुबोधचन्द्रजीकी दफ्तरसे छुट्टी हो गई। यह सुन सु-अवसर जान अतीव प्रसन्नतासे सरलाने स्वामीसे प्रार्थना की कि कृपया आप इन छुट्टियोंमें प्रचलित विषयको प्रतिपादन करनेका समय निकालें, इसमें और कोई कार्य्य न करें, मुझे यह समझना और जानना अतीव आवश्यक है।

सुबोध—मैंने तुमको बहुत कुछ समझाया है परन्तु एक बात जो अति आवश्यक थी कहना भूल गया। आज मैं वही कहता हूं, जिसके बिना जाने मातापिताको संसारमें अनेक दुःख और आपत्तियां झेलनी पड़ती हैं।

स०—कृपया आप जो कहना चाहते हैं शीघ्र कहें, मैं सुननेके लिये अतीव उत्कंठित हूं।

सु०—आजकल प्रायः लोग यह समझते ही नहीं कि शरीर और मनकी कैसी दशामें संतानोत्पादन करना चाहिये। आजकल संसारमें जो चिररोगी, कृशांग और संसारके लिये बोझरूप दुराचारी संतान नजर आ रही है यह सब इसी त्रुटिका फल है।

स०—इससे क्या आपका यह अभिप्राय है कि ऐसे लोग विवाह ही न करें ?

सु०—और क्या, अबोध मातापिताकी संतान जब ६ वर्षकी भी हो जाती है, तब भी वह माता तथा अन्य संबंधियोंको पहचानतीतंक नहीं, और न अपने मनके भावको प्रकट ही कर सकती है। वह केवल भूखके समय टूटी-फूटी भाषामें रोटी मांग लेना ही सीखती है। उधर दूसरी ओर देखें कि एक परिवारमें एक आनन्दोत्सवमें मग्न स्त्री-भर्त्ताके मन और शरीरकी प्रफुल्ल अवस्थामें, संतानोत्पादन योग्य दशामें, सन्तान उत्पन्न हो तो सन्तान हंसमुख, बलिष्ठ और सद्गुण-संपन्न होती है जो कभी रोना जानती ही नहीं। इन दोनोंमें कितना भेद है। सरला ! अब तुम ही सोच लो कि शरीर और मनकी कैसी दशामें सन्तानोत्पादन करना उचित है। मेरी सम्मतिमें अबोध, धनहीन, और चिन्तातुर बालक बालिकाओंका विवाह कदापि नहीं होना चाहिये, क्योंकि ऐसे लोगोंकी संतानसे संसारमें सुखकी नहीं किन्तु घोर दुःखकी ही वृद्धि होती है।

मरते समय जो मनुष्य देखता है कि मेरी संतान दुःखी और दुराचारी है उसकी आत्माको परम क्लेश होता है और जिसकी संतान सुपात्र और सुखी हो वही जीव सानन्द इस असार संसारसे यात्रा करता है।

स०—तो आपके कथनका यह सार मैं समझती हूं कि स्वस्थ शरीर और सुप्रकृति-संपन्न बालक बालिकाओंका ही विवाह होना चाहिये।

सु०—क्या यह मेरा ही कथन है और स्वभावसिद्ध नहीं? क्या प्रत्येक मनुष्य यह नहीं चाहता कि मेरी संतान सुपात्र हो और सुपात्र संतान बनानेके लिये अपनी सामर्थ्यभर चेष्टा नहीं करता?

स०—तो सार यह है कि मातापिताके आरोग्य, सबल और सुशिक्षत होनेपर ही संतान सुपात्र और आरोग्य होती है।

सु०—मेरा अभिप्राय इससे भी बढ़कर है। जो सुपात्र संतान चाहता हो उसे मातापिता बननेसे पूर्व ही आत्मोन्नतिके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि मनुष्यमें कई बुरे भाव,कुशिक्षा, रोग और दुराचार ऐसे होते हैं जो वंशपरंपरासे संतानमें आ जाते हैं। मैंने पहिले ही कहा है कि जिस प्रकार रोगादि संतानमें वंशक्रमसे आते हैं वैसे ही मनकी उन्नति, अवनति, कुटिलता, सरलता, बुद्धिमत्ता, बुद्धिहीनता आदि सब ही मनके भाव संतानमें आ जाते हैं। यहांतक कि मातापिताके थोड़े कालके लिये उपजे हुए भाव संतानमें चिरस्थायी हो जाते हैं।

स०—तो क्या एक दिन या एक घड़ीके लिये उत्पन्न भाव भी संतानके मङ्गल और अमङ्गलके कारणरूप बन जाते हैं?

सु०—हां, एक सुप्रसिद्ध अङ्गरेज डाक्टरका कथन है कि, यह निश्चय समझिये कि मातापिताके स्वभावका क्षणिक प्रभाव ही संतानपर नहीं पड़ता वरंच वह संतानके लिये चिरस्थायी हो जाता है। इसी प्रकार एक दार्शनिक अंग्रेज लिखता है कि मेरा विश्वास है कि संतानका भला या बुरा होना मातापिताकी प्रकृतिपर निर्भर है। माताका आचार-व्यवहार सब संतानमें आ जाता है; क्योंकि

संतान मातापिताके रुधर और वीर्य्यसे ही शरीर धारण करती है, इसीसे उसका मन, बुद्धि आदि भी संगठित होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

स०—ओ हो; फिर तो संतानका अच्छा बुरा बनाना बड़ा सहज है और वह केवल मातापिताके अधीन है। मनुष्य ही संसारको स्वर्गधाम या नरकालय बना सकता है।

सु०—इसीसे तो भलोंके घरोंमें बुरी और बुरोंके घरोंमें भली संतान उपजती है, क्योंकि संतान उत्पादन समय यदि साधु-प्रकृति मातापिताके मनमें चंचलता व तमोगुण प्रधान हो तो संतानमें वही चंचलता और तमोगुणकी प्रधानता होगी और यदि दुराचारी, कपटी मातापिताके मनमें उस समय शान्ति और सतोगुण उत्पन्न हो तो संतान शान्त स्वभाव और सतोगुणी उत्पन्न होगी। यह तीनों गुण सत्व, रज और तम स्वाभाविक प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न और शान्त होते रहते हैं। एक ही गुण किसी पुरुषमें सदाके लिये नहीं रहता, यह प्रकृतिका नियम है।

स०—इससे तो जान पड़ता है कि संतानका भला या बुरा होना मातापितापर ही निर्भर है। परन्तु सन्तान भली, सत्पात्र और देशके लिये मंगलकारी तभी हो सकती है जब मातापिता बच्चेके उत्पन्न करनेसे पूर्व ही स्वयं सतोगुण प्रकृति हों और माताके गर्भमें जबसे बच्चा प्रवेश करे उस दिनसे लेकर दश महीने और दस दिनतक माता सतोगुणी प्रकृति, प्रसन्न-मन, साधु-स्वभाव सदा रहनेका प्रयत्न करे। ओहो! यह तो परम कठिन कार्य्य है और

बालकोत्पन्न होनेसे पीछे या यह समझें कि मातापिताको जन्मसे मरणतक इस कार्य्यके लिये सदैव प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

सुबोध—निस्संदेह यह महा कठिन काम है। क्या तूने यह समझ रक्खा था कि यह गुड़ियोंका खेल है और तनिकसे परिश्रमसे देशोपकारी, ईश्वरभक्त, जगद्विख्यात सन्तानकी तुम माता बन जाओगी ? नहीं, कदापि नहीं, इसके लिये बड़े उद्योगकी आवश्यकता है। परन्तु यदि तुम इतने परिश्रम करनेपर भी सुयोग्य संतानकी माता कहा सको तो यह बड़ा सस्ता काम है और बड़े सौभाग्यका विषय है ।

आठवां परिच्छेद ।

आज छुट्टीका दिन था, मध्याह्न समयमें ही सरला सब कामसे निपट स्वामीके पास आ प्रार्थना करने लगी कि कृपया शिशुशिक्षा विषयक वार्तालाप आरंभ कीजिये ।

सु०—अभी तुम काम-काज करके आई हो, कुछ काल विश्राम करो, फिर मैं तुमको बुला लूंगा ।

स०—विश्रामसे मुझे आनन्द नहीं है । मेरी प्रसन्नता इसी बातमें है कि मैं शिशु-शिक्षाकी पूर्ण ज्ञाता बन जाऊं । मेरे मनमें यह विचार प्रति क्षण गूंज रहा है, मुझे यही धुन लगी है । कृपा करके इस कार्य्यमें आप विलंब न करें ।

सु०—बहुत अच्छा, तुम माताजीको भी बुला लो ; क्योंकि इस विषयमें उनसे भी बड़ी सहायता मिलती है ।

स०—कृपा करके आप ही माताजीको बुला लें ।

सुबोधचन्द्रजीने घरसे बाहर निकलकर देखा कि वह एकांतमें बैठे रामायण पढ़ रही हैं ; परन्तु सुबोधके देखते ही वह समझ गईं और वहां आ गईं ।

सु०—जब मैं इस कमरेसे बाहर निकला तो एकाएक मेरे मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि संसारमें चलनेके लिये जो अत्यु-चित शिक्षाका समय है वह बाल्यावस्था है । यदि बाल्यावस्थामें ही माताकी शिक्षासे बालकरूपी पौदा सींचा जाता है तो वह

बढ़कर वृक्षरूप हो संसारको मधुर फल देनेवाला होता है। और जिसको मातृशिक्षारूप जल नहीं मिलता वह ठीक जलहीन वृक्षकी नाईं फलता फूलता नहीं और पौदेकी दशामें ही मुरझा जाता है।

स०—यह मैं भलीभांति समझ गई कि पुत्रके सुपात्र और कुपात्र बनानेकी जिम्मेवार माता ही है, इसमें कुछ संदेह नहीं।

सु०—इस संसारमें स्वाधीन चित्त, नीतिपरायण, धर्म्मवीर मनुष्य जन्म लेकर मनुष्य-जातिके गौरवको बढ़ानेवाले हुए हैं। सरला तुम निश्चय समझो कि उनके हृदयमें उक्त सद्गुणोंका बीज उनकी माताओंने ही अतीव बचपनकी अवस्थामें बोया है।

मा०—यह तुमने ठीक कहा है, जो जो बड़े बड़े महापुरुष हुए हैं सब माताहीके गुणोंसे हुए हैं, और जो संसारमें अमंगलरूप, दुष्ट, दुराचारी मनुष्य हुए हैं वे भी माताकी ही कुशिक्षासे हुए हैं। माता ही पुत्रको सुपात्र और कुपात्र बनानेकी उत्तरदाता है।

स०—तो क्या आप मुझे कभी कभी जिन महापुरुषोंकी जीवनी सुनाती थीं वे माताओंके उपदेशसे ही धर्म्मवीर और कर्म्मवीर हुए हैं।

सु०—क्या तू नहीं जानती कि इस संसारके प्रायः सभी बड़े महापुरुष माताओंके सदुपदेशोंसे बने हैं? पहिले भक्त ध्रुवकी कथा याद है?

स०—आप फिर कह दीजिये।

मा०—मैं कहती हूं, सुनो। उत्तानपाद राजाके दो पुत्र थे।

ध्रुव और उत्तम। सुरुचिके गर्भसे उत्तम और सुनीतिके गर्भसे ध्रुवका जन्म हुआ था। सुरुचि राजाकी परम प्रिय पत्नी थी और यह इनको कठपुतलीके समान नचाती थी। यह सबको विदित है कि सौत सौतको नहीं चाहती इसीसे सुरुचिने स्वामीको सुनीतिके विरुद्ध कर दिया था। यहांतक कि अन्तमें राजाने सुनीतिको घरसे निकाल दिया था। एक समयका वृत्तान्त है कि जब ध्रुवकी आयु अभी ५ ही वर्षकी थी, ध्रुव अति लाड़भावसे पिताकी गोदीमें बैठनेको उत्साहित हुआ और पिता भी उसे गोदमें लेनेको उद्यत हुआ। परन्तु यह सब हाल सुरुचि देख रही थी। जब उसने देखा कि राजाजी ध्रुवको गोदमें लेने लगे हैं तो तत्काल बोल उठी—"बस राजन्! आप इसे इस गोदमें न लें।" और ध्रुवको झिड़ककर कहने लगी—"अरे मूर्ख अभागे! तू सुनीतिके गर्भसे उत्पन्न होकर इस राजसिंहासनपर पिताकी गोदमें बैठनेके योग्य नहीं।" इस प्रकार तिरस्कृत हो जब ध्रुव अपनी माताके पास जाकर रोया तब माताने उसे जो उपदेश दिया था, उसे सुनो—

"पुत्र, सुरुचिने सत्य कहा है। वास्तवमें तुम अभागे हो जो तुमने मुझ अभागिनी माताके गर्भसे जन्म लिया। देखो शत्रु यदि भाग्यवान् हो तो कौन उसका सामना कर सकता है? तुमको इतना क्रोध नहीं करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य अपने ही किये कर्म्मोंका फल भोगता है। मनुष्य अपने कर्म्मानुसार ही सुख-दुःख, हाथी-घोड़े, रथ, चँवर, छत्र आदि प्राप्त कर सकता

है। तुमको क्रोध नहीं करना चाहिये; क्योंकि वही बुद्धिमान है जो जो कुछ उसको मिले वही पाकर आनन्दित रहता है। यदि सुरुचिके कथनसे तुमको दुःख हुआ है तो तुम भी वही काम करो जिससे सुख, ऐश्वर्य्य, राज्य, और छत्र तुमको भी प्राप्त हों। सुशील और धर्म्मपरायण हो, सबका मित्र बन, सब जीवोंपर दया करना सीखो। ऐसा करनेसे सब संपदा तुम्हारे पास इस प्रकार आयँगी जैसे वर्षाका जल गड्ढोंमें अपने आप जाता है।

पुत्र, स्मरण रखो, कि वह जगतपिता जगदीश्वर ही भक्तजनोंके दुःख-क्लेश दूर करनेवाले हैं, उनके बिना कोई किसीके क्लेशोंको दूर नहीं कर सकता। तुम भी उसी हरिकी शरणका आश्रय लो, तभी वे तुमको सुख, शान्ति आदि प्रदान करेंगे... ।"

सुशीले! इसी उपदेशसे ध्रुवने कितनी घोर तपस्या की थी जिसका फल यह हुआ था कि ध्रुवने वह पदवी पायी जिसको बड़े बड़े राजा-महाराजा और ऋषि-मुनि भी नहीं पा सकते।

स०—यह तो प्राचीन कालका इतिहास है। कृपा करके आधुनिक समयका भी कोई इतिहास कहिये।

सु०—राजपूतानेके जितने वीर राजा हो गये हैं क्या तुमने नहीं सुना कि उनकी वीर माताओंने किस २ प्रकारकी वीरताकी शिक्षा दे उनको देश-रक्षाके लिये कैसा साहसी बना दिया था। इतना हो नहीं मातायें एकलौते पुत्रोंको रणमें मरनेके लिये अपने हाथोंसे उनको वस्त्र पहनाकर भेजती थीं और यदि रणभूमिमें पीठ दिखाकर कोई आ जाता तो जीवन-पर्य्यन्त पुत्रके मुखको नहीं देखती थीं।

आठवां परिच्छेद।

इससे भी पीछेके समयके राजा राममोहनराय और केशव-चन्द्रसेन, महाराज तिलक और गांधी प्रभृति जगत्प्रसिद्ध सब महापुरुषोंने जो जो बड़े बड़े काम किये हैं वह सब भी एक मात्र माताओंकी सुशिक्षाका परिणाम था।

स०—कृपापूर्वक और भी इसी प्रकारका दृष्टान्त कथन कीजिये।

मा०—मेरा तो अब पूजनका समय है, मैं जाती हूं।

सु०—माता! थोड़ा काल तो और ठहरिये।

मा०—पुत्र, मैं तो नहीं ठहर सकती, मैं जाती हूं।

नवां परिच्छेद ।

सु०—इसी प्रकारके जितने धर्म्मवीर, कर्म्मवीर, और परोपकारी महापुरुष हुए हैं सब ही माताकी सुशिक्षासे हुए हैं। भारतवर्षमें ही नहीं यूरोपमें भी जितने अग्रगण्य और साहसी महात्मा हुए हैं उनकी मातायें भी बड़ी धर्म्मात्मा एवं कर्म्मवीरा हुई हैं। उन्हींके सदुपदेशोंसे उनकी संतानने इतना बड़ा नाम पाया है।

स०—कृपाकर एक दोके चरित्र तो वर्णन कर दीजिये।

सु०—बहुत अच्छा, सुनो। भला पाकरके विषयमें तुमने कुछ वृत्तांत सुना है? यदि स्मरण हो तो कहो।

स०—हां, मुझे याद है। यह महाशय अमरीकामें जो विक्रीत दासकी चाल थी उसके हटानेके मूल कारण हुए हैं। इनके उत्साह, उद्यम और परिश्रमी प्रकृतिने अमरीकामें एक विचित्र परिवर्तन ला दिया था। यह भी एक धर्म्मशीला माताकी गोदमें पले थे, इसीलिये आज जगत्के अग्रगण्य सुप्रसिद्ध महापुरुषोंकी श्रेणीमें इनकी गणना है।

सु०—यह नितान्त सत्य है कि सुशिक्षिता मातासे शिक्षा पाये विना कोई मनुष्य उन्नत दशाको प्राप्त नहीं कर सकता। इसके सहस्रों प्रमाण इस जगत्में मिलते हैं। यह सत्य समझिये कि जन-समाजकी उन्नत दशाका मूल कारण सुशिक्षिता मातायें हैं।

स०—कई मनुष्योंका विचार है कि स्त्रियोंका लिखना पढ़ना सीख लेनेसे पारिवारिक शान्ति भंग हो जाती है, स्त्रियां भी बाबू बन जाती हैं, इसलिये उनको पढ़ाना उचित नहीं।

सु०—उन क्षुद्र मनुष्योंको इतना कह देना उचित होगा कि सुशिक्षारूपी वायु प्रवाहमें अशान्तिका बीज कभी नहीं बोया जा सकता। हमारे बुरे विचार ही हमारी शान्ति और उदारताके विनाशकारी होते हैं। स्त्रियोंकी जो दुर्गति है उसका एक मात्र मूल कारण यही है। जब अपने परिवार, अपने ग्राम और अपने देशकी दुःखित अवस्थासे हम दुःख अनुभव करने लगेंगे, तब हमको पूर्ण रूपसे प्रतीत हो जायगा कि स्त्री-शिक्षा कितनी आवश्यक है। स्त्री-जातिके उन्नति प्राप्त किये विना मनुष्य-जाति कदापि उन्नति लाभ नहीं कर सकती और भारतवर्ष स्त्री-शिक्षाके विना अपनी दुर्गतिसे उद्धार कदापि नहीं पा सकता।

तुम्हारे पिताने तुमको शिक्षा दी है। तुम ही देख लो, तुम्हारे आनेसे इस परिवारमें अशान्ति और कोई झगड़ा उत्पन्न नहीं हुआ, वरंच शान्ति और सुख ही बढ़ा है। और नहीं, मेरी वृद्धा माताने जो सदैव हरिभक्तिमें मग्न रहती हैं क्या तुम्हारे लिखा-पढ़ा होनेसे तुम्हारी कोई शिकायत की है?

स०—आपके गृहमें जो शान्ति है उसका कारण मैं तुच्छबुद्धि नहीं हूं वरंच आपकी धर्म्मात्मा, साधु-प्रकृति और धर्म्मशीला माता हैं। वही इस परिवारकी शान्ति, सुख और आनन्दधामका मूल कारण हैं।

सु०—भारतवर्षमें सर्व सुखका आधेसे अधिक भार स्त्री-शिक्षापर निर्भर है। जनसमाजकी उन्नति एक मात्र शिशु-शिक्षाके अधीन है और वह शिशु-शिक्षा माताओंपर निर्भर है। यदि मातायें भूत, प्रेत आदिके मिथ्या भयको छोड़ सन्तानके हृदयमें सुशिक्षाका बीज बो दें तो मनुष्य वीर, गंभीर और कर्तव्य-पालनके योग्य बन सकते हैं और तभी भारतवर्षकी दशा परिवर्तित हो सकती है।

स०—कृपा करके और भी महापुरुषोंके वृत्तान्त वर्णन कीजिये जिनको माताकी सुशिक्षासे गौरव प्राप्त हुआ हो।

सु०—अमरीकाके शिक्षा-विभागके सुप्रसिद्ध कर्म्मचारी श्रीमान् (Adams) एडमस् साहिबका कथन है कि मनुष्य-जातिमें सर्व-श्रेष्ठ सुखोंका मूल कारण पूर्ण सुशिक्षिता और सब प्रकारसे सन्तानपालन-गुणसे निपुण माता ही हैं। बाल्यावस्थामें यदि मेरी जननी, जो कि इन गुणोंसे पूर्ण सम्पन्न थीं मुझे शिक्षा न देतीं तो आज मैं इस योग्यताको कदापि प्राप्त न होता। मेरे जीवनमें जो कुछ त्रुटियां हैं वह एकमात्र इसलिये हैं कि मैंने माताका आज्ञापालन पूर्ण रूपसे नहीं किया।"

फ्रांसके महाराज नेपोलियन बोनापार्टका कथन है कि "बच्चेका युवावस्थामें सदाचारी या दुराचारी होनेका एकमात्र माताकी शिक्षा ही मूल कारण है, क्योंकि मनुष्यमें स्वच्छन्दता, निर्भयता, नेकचलनी, उद्यम और आत्म-शासन आदि गुण हैं परन्तु इनको जागृत करनेमें एकमात्र माता ही सहायिका है, माता ही परम स्नेह,

मधुर शब्दों और प्रेमसे बच्चेको शिक्षा दे सकती है और आज्ञा पालन करनेका गुण प्रकट कर सकती है। मैंने यह सब गुण एक मात्र मातासे ही प्राप्त किये हैं।

सरला—मनुष्यको सब सद्गुण मातासे प्राप्त होते हैं इसलिये देशकी अवनति और उन्नतिका मूल कारण स्त्री-जातिकी दशापर निर्भर है। जिस परिवारमें स्त्रियां जितनी सुघड़ और सुशिक्षिता होंगी उतनी ही संतान सुघड़ होगी।
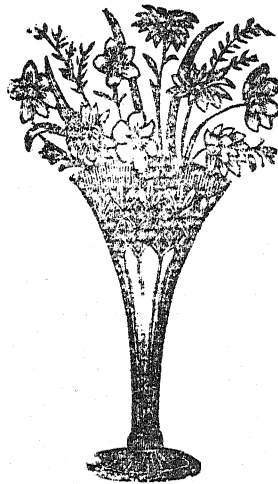
दशवां परिच्छेद ।
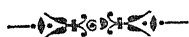
इस उपरोक्त वार्तालापसे यह फल निकला कि सरला अपने ५ मासके शिशुको तदनुसार शिक्षा देनेमें प्रवृत्त हो गई। दूसरे दिन फिर सायंकालको सुबोधचंद्र अपनी माता और स्त्रीको लेकर इस प्रकार इस विषयको आरम्भ करने लगे।

सु०—माताजी आपने मुझे सुबोध करनेमें जो उपाय किये थे उनमेंसे थोड़े ही आपने वर्णन किये थे आज और भी कथन कीजिये।

मा०—जिस प्रकार बच्चा कुपथगामी न हो इस विषयमें जितना मुझे ज्ञान था तदनुसार ही मैंने उपाय किया था, परन्तु उस समय मुझे भी पूर्ण ज्ञान नहीं था। अब अवस्थाके भेदसे जो अन्य ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है आज मैं वह कहती हूं, सुनो।

सन्तानको सत्पात्र बनानेके लिये माताको धर्म्मका दीपक हाथमें ले ज्ञान-मार्गके मार्गपर चलना उचित है। प्रत्येक माता-पिताकी यही इच्छा होती है कि हमारी संतान कीर्तिमान होकर वंशका नाम रोशन करे। परन्तु मुझे खेदसे कहना पड़ता है कि आजकलके मातापिता इस ओर तनिक ध्यान नहीं देते। वह एक मात्र धर्म्माधर्म्म-भावसे धनसंचयके लिये संतानको शिक्षा देते हैं। तुमने भी अंग्रेजी पढ़ी है और अंग्रेज यहां पुरुषोंके ही

उदाहरण और उनकी शिक्षा-प्रणालीका प्रतिपादन कर सकते हो। मुझे इस बातसे तनिक भी खेद नहीं। जहांसे उत्तम शिक्षा मिले वह लेनी अनुचित नहीं। परन्तु हमारे बच्चोंके लिये हमारे देशके महापुरुषोंके जीवन उनके हृदयङ्गम कराने अधिक गुण-दायक हैं।

सु०—मुझे अबतक स्मरण है कि जब मैं छोटा सा था तब आप मुझे सत्यराज हरिश्चन्द्रकी कथा सुनाते थे। वह मुझे आज-तक स्मरण है।

मा०—राजा हरिश्चन्द्रने राजा होकर भी जिस प्रकार क्लेश सहन कर स्वार्थको छोड़ सत्यताका पालन किया था, पापी रत्ना-करने राम-नामका भजन कर जिस प्रकार अपना जीवन बदल कर अन्तमें वाल्मीकि ऋषि नामसे प्रसिद्धि पाई थी, यही यदि बालकोंके कोमल हृदयमें पूर्ण रूपसे समझाये जायं तब अवश्य-मेव बालक धर्मवीर और सत्यपरायण हो जायें इसमें सन्देह नहीं।

बालकोंको यदि कहानियां सुनाई जायें तो रत्नाकरकी मुक्ति, हरिश्चन्द्रका स्वार्थत्याग, युधिष्ठिरकी धर्म्मनिष्ठा, भीष्म पिता-महका बाणोंकी शय्यापर शयन, अर्जुनका रणकौशल और बाहुबल अतीव सरल भाषामें सुनाना चाहिये तथा श्रीरामचन्द्रजी-की पितृभक्ति, भ्रातृ-प्रेम, लोकापवादकी निवृत्तिके लिये आत्म-सुख-विसर्जन, लक्ष्मणका भ्रातृ-स्नेह-वीरता आदि २ बच्चोंके मनोंमें, अच्छी तरहसे कहानियोंके मिससे समझा देनी चाहिये।

और कन्याओंको, यदि कहानियां सुनानी हों तो सदैव राज-कुमारी सतीका पिताके घरमें भर्त्ताकी निन्दा और अपमान देख देह-त्याग, राजपुत्री और राजस्नुषा होनेपर भी सीता महारानीका श्रीरामचन्द्रजीके साथ वनगमन करना और वनमें नाना प्रकारके दुःख और क्लेशोंका सहन करना और उन महान क्लेशोंके होनेपर भी उनके मनमें पितृ-गृहमें आगमन या श्वसुर-गृहमें आगमनकी इच्छातकका न आना तथा रामचन्द्रजीके साथ रहते हुए, और त्याग कर देनेपर भी कदापि रामचन्द्रजीकी निन्दा न करना वरञ्च पुनर्जन्ममें रामचन्द्रजीकी ही पत्नी बननेकी इच्छा प्रकट करना। एक दरिद्र ब्राह्मणकी निकट ही मृत्यु होनी जानकर भी सावित्रीने उसीसे विवाह कर लिया, और संसारमें एक अपूर्व प्रेमका दृष्टान्त छोड़ गई। गांधारीने अपने अन्धे राजकु-मार धृतराष्ट्रसे सम्बन्ध होता सुनकर ही इस भावसे कि यदि मेरा स्वामी संसारके दृश्य-दर्शन सुखसे वंचित है तो मुझे भी इन नेत्रोंसे सांसारिक दृश्य देखकर उनसे विशेष आनन्दानुभव करना उचित नहीं, अपने नेत्रोंपर पट्टी बांध ली और अपने जीवनमें उसे नहीं खोला ऐसी अनेक और भी बहुतसी देवियां और महात्मा पुरुष इस भारतवर्षमें हुए हैं। इनके सविस्तर जीवन-चरित्र अपनी संतानके हृदयमें बाल्यावस्थामें ही मातापिताको पूर्णरूपसे दृढ़ कर देने चाहिये।

इस संसारमें लोग संतानका होना बड़े पुण्योंका फल मानते हैं और संतानके न होनेसे अपना सर्वनाश समझते हैं। संता-

नोत्पत्तिके लिये दो-दो तीन-तीन स्त्रियोंसे विवाह कर लेते हैं परन्तु अपनी संतानको मनुष्य बनानेके लिये प्रयत्न नहीं करते। उनकी यह दशा देख मुझे परम खेद होता है।

सु०—ऐसा क्यों होता है ? मेरे विचारमें तो लोग इस कुपात्र संतानके होनेपर हमारी यह दुर्गति होगी इस विषयके ज्ञानसे पूर्ण अनभिज्ञ हैं।

मा०—पुत्र ! आजकलके लोग संसार-सुखके प्रेमी हो गए हैं, धर्म्म-बुद्धि और धर्म्म-भाव इनसे दूर चला गया है,इसीलिये हमारी यह दशा हो गई है। व्यापारमें धोखा और नौकरीमें ठगी करना एवं रिशवत लेना पाप ही नहीं समझते। इन्हीं भावोंसे देशकी यह दुर्दशा हो गई है। मातापिता स्वयं मनुष्य नहीं तो संतान किस प्रकार मनुष्य बन सकती हैं, इस बातका ज्ञान भी उनको किस विधि हो सकता है ?

अन्धा देखना, बहरा सुनना, गूंगा बोलना और पंगु पहाड़पर चढ़ना चाहे और वामन आकाशको छूना चाहे तो यह काम असंभव होनेपर भी मुझे संभव भासते हैं परन्तु जो स्वयं मनुष्य नहीं और वह मनुष्य संतान चाहे तो वह कदापि लाभ नहीं कर सकता, मेरी समझमें यह सर्वथा असंभव है। सत्यवादी और धर्मात्मा न होनेपर संतानको धर्म्मात्मा देखनेकी इच्छा करना, आप व्यभिचारी और शराबी होनेपर सुपात्र संतानके लिये अभिलाषा करनी व्यर्थ है। हमारी माता यदि भूतोंके भयसे भीत होनेवाली हो, अमावसकी रात्रिको भूतोंका क्रीड़ा-काल मानने-

वाली हो और रोगी होनेपर पिशाचका आवेश माननेवाली हो तो उससे पालन-पोषण हुई संतान निर्भय, उन्नत-भाव क्या कभी हो सकती है ? कदापि नहीं ।

सु०—माताजी ! भारतकी पूर्व दशासे वर्त्तमान कालकी दशाकी तुलना करनेपर आप कुछ भेद देखते हैं या नहीं ?

मा०—इसमें बड़ा भारी अन्तर हो गया है । पहिले समयके लोग धर्म्मके प्रेमी होते थे और धर्म्मानुसार ही कर्तव्य कर्म्म करते थे । पूर्वकालमें यदि कोई किसीके यहां अतिथि आता था तो भूखे रहकर अथवा पुनः पकाकर आप खाते थे परन्तु अतिथिका पेट-पालन उत्तम समझते थे । पूर्वकालीन हिन्दू अपरिचित दुःखग्रस्त मनुष्यकी भी तन-मनसे सेवा शुश्रूषा करते थे,निराश्रयको आश्रय देते थे और अतिथिको अन्नदान देनेसे कदापि मुख नहीं मोड़ते थे । गांवोंमें रहनेवाले बच्चे गांवके सब बड़ोंको बड़े आदर सत्कारसे बुलाते थे । इसीसे बच्चे दयावान और मधुरभाषी होते थे । बड़े दुःखका विषय है कि वह सुखके दिन चले गये । उन दिनोंमें सब बच्चे अपने २ घरकी मर्य्यादा देखकर ही सुशिक्षित हो जाते थे । आजकल तो ठीक इससे विपरीत दशा हो गई है ।

सु०—माताजी ! आपका कथन मुझे बहुत ही प्रिय मालूम होता है । मुझे स्मरण है कि मैं पूर्वकालमें नाईको चाचा और धोबीको ताया कहकर पुकारता था । एक बार मैंने धोबीको सुधू कहकर पुकारा था तो मेरे पिताने बहुत झिड़का था ।

मा०—प्राचीन समयमें १२ महीनोंमें १३ धर्म्मोत्सव मनाये

जाते थे। धीरे धीरे वह सब छूट गये और उनके विरुद्ध और कोई नये भी स्थिर नहीं हुए। धर्म्मानुष्ठानके वह सब स्थान शून्य दिखाई देते हैं। यदि मातापिता ही सर्व प्रकारसे धर्म्मानुष्ठानरहित हों और भगवानके नामको भूले हों तो फिर उनकी सन्तानको धर्म्म-जीवन-लाभकी आशा कैसे हो सकती है?

सु०—माता! आजकलके मनुष्य दूसरेके राई जितने दोषको हिमालय जैसा और अपने महान अपराधको भी तुच्छ समझते हैं। यह देख सुकुमार बालक भी ऐसे ही स्वभाव धारण कर लेते हैं। इसलिये माताको अतीव सावधान रहना चाहिये; क्योंकि मनुष्यके निज चरित्रका ही संतानपर पूर्ण प्रभाव पड़ता है।

मा०—बालक-बालिकाको यदि यह प्रतीत हो जाये कि हमारे माता-पिता उस चराचरके स्वामी परमेश्वरको मानते ही नहीं, और अपने महान महान दोषोंको तुच्छ समझते हैं। और या सदैव दूसरोंके साथ अन्याय-व्यवहार करते हैं, तो वे धर्म्मात्मा, साधुप्रकृति और जनसमाजके लिये सुखदाई हो ही नहीं सकते।

सु०—एक बार एकान्तमें बैठ शान्त चित्तसे सोचें तो जान पड़ेगा कि धर्म्मात्माओंको धर्म्मज्ञान, राजाओंको राजशासन-ज्ञान, देशभक्तोंको देशसेवा-संबंधी ज्ञान आदि तब ही बच्चोंमें आ सकते हैं जब गृहके स्वामी बड़े-बूढ़े इनपर दृढ़प्रतिज्ञ हों अन्यथा कदापि नहीं आ सकते। और सद्‌गुणोंके आनेसे ही संसारका मंगल हो सकता है।

ग्यारहवां परिच्छेद ।

इसके अनन्तर एक वर्ष तक सरला और सुबोधचन्द्र बेचारेको इस विषयमें वार्त्तालाप करनेका अवसर ही नहीं मिला; क्योंकि उधर माताजी बीमार रहीं जिसपर सुबोधचन्द्रजीको सरलाको मातृसेवाके लिये २४ परगना जिलेके एक ग्राममें भेजना पड़ा और अंतमें इनकी माताजी परलोक गमन कर गयीं। फिर इनके चाचाजी बीमार हो गये। उनकी सेवाका भार बेचारी सरलाको उठाना पड़ा। सुबोधचन्द्रजी अपनी नौकरीपर कलकत्तेमें ही रहते थे, परन्तु फिर भी सरला संतान-पालन और शिक्षानुसार चलनेके यत्नमें लगी रहती थी। जब सरलाने देखा कि मैं बच्चेकी यथोचित सुध नहीं ले सकती और वह भी ज्वर और खांसीसे रोगी हो गया तो उसने दुःखी हो अपने स्वामीको समस्त हाल वर्णित कर बड़ी जिज्ञासा की कि आप कृपा करके बच्चेको अपने पास रखनेका प्रबंध करें अन्यथा मेरा आपका इस बच्चेको मनुष्य बनानेका सब प्रयत्न व्यर्थ हो जायेगा।

इस पत्रके आनेपर सुबोधचन्द्रजीको बड़ी चिन्ता हुई। चाचाजीकी देरकी रुग्णावस्थासे और भी खेद उत्पन्न हुआ और विचारने लगे कि ईश्वर न करे यदि चाचाजी भी परलोक-यात्रा कर गये तो मैं इतने थोड़े वेतनमें उनके तीन चार बच्चोंको मनुष्य बनानेमें

किस प्रकार सफलता लाभ करूंगा। बहुतसे विचारोंके अनन्तर उन्होंने यही निश्चय किया कि बच्चे, स्त्री और चाचाजीको यहीं ले आऊं तो ठीक रहेगा। यही निश्चय कर वह अपने ग्राममें चले गये।

जब चाचाजीने सुना कि सुबोध आ गया है तो बड़े विकल स्वरसे रोकर कहने लगे—"पुत्र! यह बच्चे अभी बाल्यावस्थामें हैं। इनके पालन-पोषणका भार एकमात्र आपपर है। बेचारे सुबोध चाचाजीके गले लग रुदन करने लगे। यह दिन तो इसी प्रकार गुजर गया, क्योंकि सुबोधजी प्रायः सूर्य्यास्तके समय ग्राममें पहुंचे थे। दूसरे दिन प्रातःकाल ही ग्रामसे ३ कोसपर एक सुयोग्य डाकृर रहता था। सुबोधचन्द्र उसे बुला लाये और उसकी सम्मति ले पालकीमें चढ़ाकर दो बंधुओंको साथकर कलकत्तेको भिजवा दिया और आप भी अपनी पत्नी और पुत्रको साथ ले रेलके मार्ग कलकत्तेको चल दिये।

चाचाजीके कलकत्ते पहुंचनेसे पूर्व ही सुबोधचन्द्र परिवार सहित कलकत्ते पहुंच गये और घरमें पत्नीको ठहराकर आप गाड़ी ले उस ओर चल दिये जिधरसे चाचाजीकी पालकी आती थी। शहरसे बाहर कुछ दूरपर इनकी भेंट हुई। वे बंधुओंको भी गाड़ीमें बैठा धीरे २ पालकीके साथ २ चल घर ले आये और बड़े सुयोग्य डाकृरका इलाज आरंभ कर दिया। परन्तु ईश्वरेच्छा बड़ी बलवान है कि अभी चाचाजी तो पूर्ण नीरोग न हुए अर्थात् उनकी बीमारी तो दूर हो गई परन्तु निर्बलता बहुत थी, सेवा

शुश्रूषाकी बड़ी आवश्यकता थी। उधर इनके प्राणोंका आधार सरलाका जीवनलक्ष सुकुमार बच्चा जो कि बीमार तो पहिले ही था अधिक बीमार हो गया।

परन्तु सुबोधचन्द्रजीके सिरतोड़ प्रयत्नसे और सरलाकी सेवासे सुकुमार शिशुके प्राण बच गये अर्थात् इसका पुनर्जन्म हो गया और चाचाजी भी धीरे स्वस्थ हुए और पूर्ण नीरोग हो अपने घरमें आनन्दसे आ गये। और बड़े दिनोंके अनन्तर सरला-की वह मनोकामना पूर्ण हुई जो वह पति सहित निवास करनेके लिये रखती थी।

बारहवां परिच्छेद।

अब सुबोधचन्द्रका पुत्र इस योग्य हो गया था कि इस घरसे उस घर और उस घरसे इस घर आ जा सके। शरीर-शक्ति-प्राप्तिके साथ २ ही उसके हृदयके भाव भी जागृत होने लग गये थे, और उसके प्रत्येक कामसे ज्ञान और बुद्धिका आभास भी पाया जाता था। बच्चेकी यही आयु ऐसी है जिसमें वीरता, साधुता, महत्व और विनय-भावका बीज आरोपण हो सकता है और पुण्य, पवित्रता, सदाचार, प्रेम और दयाभाव उत्पन्न होने लगता है। इसलिये बुरे संस्कारोंकी दुर्गन्धि और संक्रामक वायुसे उसे अधिक बचानेकी अवश्यकता है। कुशिक्षाओंसे बचानेका पूर्ण प्रबंध करना विधेय है। इसी समयकी शिक्षाके प्रभावसे बच्चा साधु वा असाधु और देशके लिये कल्याणदायक वा दुःखदायक बन सकता है। यह आयु दो वर्षकी होती है।

एक दिन सायंकालके समय सरलाने सुबोधचन्द्रजीसे प्रार्थना की कि "आजतक जो कुछ मैंने शिशु-शिक्षाके सम्बन्धमें सुना और सीखा था उसके अनुसार मैं यथाशक्य चलती रही हूं और वह शिक्षा मेरे हृदयपटपर पूर्ण रूपसे लिखी हुई है जिसका परिणाम यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि आपका यह पुत्र अवश्य मनुष्य बनेगा। परन्तु अब तो उसके मनमें समझनेकी शक्ति,

बुद्धिमें विचार-शक्ति आदि उत्पन्न हो गये हैं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके कथनानुसार चलनेसे मैं अपने उद्देश्यकी पूर्ण सफलता प्राप्त कर लूंगी। अब आगेके लिये जैसा कर्त्तव्य हो वह वर्णन कीजिये।"

सु०—मुझ सरीखे निर्धन लोग अपने आशानुसार शिक्षा देनेमें सर्वदा अशक्त होते हैं परन्तु मैं यथाशक्य उनको दूर करनेका प्रयत्न करूंगा। और तुम भी जो त्रुटियें और अभाव जानो मुझसे कह दिया करो, मैं उनकी निवृत्तिका उपाय करूंगा।

इस बच्चेमें अब तो स्मरणशक्ति और समझनेकी शक्ति भी उत्पन्न हो गई है। कलहीकी बात है कि उस आलमारीमें जो तसवीर पड़ी है इसने निकाल ली थी और निकालकर झट बोल उठा था—"मांजो, मांजी, यह यह आपकी मूर्त्ति है?" फिर दूसरी निकालकर बोल उठा—"ओहो, यह तो बाबूजी हैं!" अब क्या करना उचित है जिससे बच्चेको पढ़ने लिखनेकी रुचि उत्पन्न हो। कृपा कर इस विषयपर अपनी सम्मति प्रदान करें।

सु०—विलायतमें बच्चोंको लिखना-पढ़ना सिखानेकी यह रीति है कि ऊपर बड़ी मोटी लिपिमें "A" लिखा होता है, उसके नीचे गधेकी एक सुन्दर तसवीर होती है, और उस तसवीरके नीचे Ass लिखा होता है। इसी प्रकार B लिखकर उसके नीचे मधुमक्षीका चित्र और उसके नीचे Bee लिखा होता है। इसी प्रकार संपूर्ण वर्णमालाके अक्षर और पशु-पक्षियोंके चित्र, और

उनके नीचे नाम होते हैं। इन चित्रोंसे बच्चेको वर्णमाला सहजमें आ जाती है।

इसी प्रकार बच्चेको अंक भी सिखाये जाते हैं, परन्तु हमारे देशमें जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है वह इस प्रकारकी उपयोगी नहीं।

स०—गणनाके लिये क्या यह रीति आपकी सम्मतिमें ठीक नहीं कि बच्चेको १ चंन्द्र २ पक्ष ३ नेत्र ४ वेद ५ वाण ६ ऋतु ७ समुद्र ८ वसु ६ नवग्रह और १० दिक् इन शब्दोंसे याद कराया जावे जिससे इन उपयोगी पदार्थोंका भी बच्चोंको बोध हो जाये।

सु०—ठीक तो है, परन्तु इतने सुकुमार बच्चे इनके भावोंको समझ थोड़े ही सकते हैं। परन्तु फिर भी १० की गणनाके साथ साथ ही कुछ न कुछ इनके भाव तो उनके मनमें आ जायेंगे। परन्तु वर्णपरिचयके साथ २ ही उच्चारण स्पष्ट होना चाहिये। उपाय तो यह ठीक है परन्तु बच्चेकी योग्यताका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

स०—यदि मैं बड़ी मोटी लिपिमें "अ" लिखकर उसके नीचे अनार और उसी प्रकार "इ" लिखकर उसके नीचे इंगूर और इसी प्रकार संपूर्ण अक्षरोंके नीचे फल व पशु-पक्षियोंके चित्र लिख उनके नाम आदि भी अक्षरानुसार लिख दूं और उनसे बच्चोंको वर्णमाला लिखाई जावे तो परम उपयोगी हो।

सु०—कल मैंने एक पुस्तक-विक्रेताकी दूकानपर इसी प्रकार

का अक्षरोंका चार्ट तो देखा था परन्तु उसमें कुछ संशोधनकी आवश्यकता है। कल मैं वह लाकर तुम्हारी सम्मतिसे संशोधन करूंगी। और यदि वह संशोधित चार्ट छपाया जाये तो बच्चेके लिये परम उपयोगी होगा। आज प्रातःकाल ही बच्चोंको क ख ग घ ङ सिखानेकी एक नयी रीति देखी है।

स०—वह नयी रीति क्या है ?

सु०—गोपालबाबू कल अपने बच्चेको बाजे द्वारा वर्णमाला सिखा रहे थे। मैं वहां बैठ गया और उनसे पूछा कि किस प्रकार आप बच्चेको यह सिखाते हैं ? उन्होंने कहा कि कल प्रातःकाल आ जाना, मैं आपको समझा दूंगा। आज प्रातःकाल मेरे सामने बाजा बजाकर क ख का शब्द बाजेसे निकालना आरम्भ किया। तीन चार बार सुरसे निकालकर बच्चेसे उन्होंने क ख आदि कहला दिये। फिर बाजेके स्वरके साथ साथ ही बच्चा क ख ग घ ङ का उच्चारण करने लग गया। फिर च छ ज झ ञ का स्वर बाजेसे निकालकर उसी प्रकार बच्चेको कहलाने लगे। बच्चेने झट च छ ज झ ञ कहना आरम्भ कर दिया। सत्य तो यह है कि बच्चेको प्रेम उत्पन्न करना कठिन है। यदि उसे प्रेम (शौक) उत्पन्न हो जावे तो फिर उसे उसका सीखना कठिन नहीं रहता, वह सब बात सुगमतासे सीख लेता है।

स०—आप ठीक कहते हैं, बच्चेको जो बात अच्छी लगती है वह झट उसे समझने लगता है और शीघ्र ही समझ व सीख लेता है।

सु०—इस समय एक बात अवश्य ध्यान रखनेके योग्य है कि जितनी सुन्दर मनको आकर्षण करनेवाली वस्तु बच्चेको दिखलाई जावेगी, उतना ही बच्चेका मन उस ओर आकर्षित होगा, और उतना ही वह उसे याद रखेगा। इसी प्रकार अनेक वस्तुयें बच्चेको दिखलानी उचित है। जितने पदार्थोंको वह मनमें रखेगा उतनी ही उसकी स्मरणशक्ति बढ़ेगी। परन्तु इस बातपर विशेष ध्यान रखना उचित है कि स्मृति-शक्ति बढ़ाते २ उनके ज्ञान, बुद्धि और विचार-शक्तिको खराब न किया जावे; क्योंकि स्मृतिशक्तिपर ही अधिक प्रयत्न करनेसे अन्य शक्तियोंका ह्रास होना संभव है। और यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि स्मृतिशक्ति आदि बढ़ाते २ उनके शारीरिक बल और पुष्टिका विनाश न हो जावे।

स०—बच्चेको सर्वशक्ति-सम्पन्न करना बड़ा कठिन काम है। स्मरण-शक्ति ही पहिले बच्चेके हृदयमें उत्पन्न होती है, फिर उत्तरोत्तर ज्ञान, बुद्धि और विचारशक्ति विकाश पाती है। यह ठीक है न?

सु०—सामान्य दृष्टिसे देखनेसे ऐसा ही प्रतीत होता है परन्तु ऐसा है नहीं। बच्चेके हृदयमें यह सब एक साथ ही उत्पन्न करनेका प्रयत्न करे। बाहरको वस्तु देखकर बच्चेको उसका ज्ञान होना सुगम है, और जिस वस्तुका ज्ञान हो उसीका स्मरण भी होता है, इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि पहिले ज्ञानकी उत्पत्ति होती है और फिर स्मरणशक्तिका विकाश होता है।

स०—अब आप कृपापूर्वक स्मरणशक्ति उत्पन्न करने और

उसके बढ़ानेकी युक्ति वर्णन करें। और जिस प्रकार ज्ञान, बुद्धि और विचार-शक्ति एक संग उत्पन्न हों वह भी वर्णन कीजिये।

सु०—बच्चेको ज्ञान-प्राप्ति कैसे होती है इस विषयमें मैं बहुत कुछ कह चुका हूं, अब अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। अब यह कहना उचित है कि ज्ञान-वृद्धिके साधन क्या हैं और किस प्रकार ज्ञान सुगमतासे बढ़ता है। तुमको ज्ञात होगा कि तुम्हारा यह बालक हाथ-पांव, नाक-कान और मुख आदि सब अंगोंके नाम जानता है और तुमको प्रत्यंगपर हाथ लगाकर दिखला देता है। और वैसे ही वह अपने मां, बाप, भाई, बहिन तथा अन्य बंधुओंको पहचानता है। इस ज्ञानका क्या कारण है? बच्चा प्रत्यक्ष देख लेता है, इसमें किसी विचारकी उसे सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

स०—तो आपका इस कथनसे यह अभिप्राय है कि बालकको बाह्य पदार्थोंको दिखलाकर उसको उनका बोध पहिले कराना उचित है?

सु०—कल प्रातःकाल मैं तुमको बच्चेके सहित अलीपुर पशुशालामें ले जाकर दिखला दूंगा और तुमको इस बातका निर्णय करा दूंगा कि बच्चेको वस्तु-प्रदर्शनसे ज्ञान-प्राप्तिमें कितनी सहायता मिलती है।

तेरहवां परिच्छेद।

दूसरे दिन सुबोधचंद्र अपनी स्त्री और सुकुमार बच्चेको साथ ले गाड़ीमें सवार हो अलीपुरको चल दिये और जब पशुशाला अर्थात् चिड़ियाघरके बागमें पहुंचे तो पहले पहल उनको वानर दृष्टिगोचर हुए, जिन्हें देखकर बच्चा मांकी गोदीसे उतर आगे २ भागने लगा और कहने लगा,—"मांजी, बानर है, यह बानर है।" बहुतेरे इकट्ठे वानरोंको देख बच्चा मातापिताके पीछे पीछे लुक गया; क्योंकि इसने इतने इकट्ठे बानर इससे पहिले कभी देखे नहीं थे। जो जीव-जन्तु सरलाने पहिले कभी नहीं देखे थे वे उसके लिये विचित्र जीव थे। परन्तु बच्चेके लिये तो सब ही नई सृष्टि थी। वानरोंको इधर उधर घूमते देख सुकुमार कहने लगा कि "मां देखो देखो, बानर क्या करते हैं!"

इसी प्रकार सुबोधचंद्र बागके अन्य कई स्थानोंमें स्त्री-पुत्रको ले गये जहांपर उन्होंने शेर, व्याघ्र, रीछ, गैंडा, उल्लू और वनमानुष आदि अनेक जीव-जन्तु सरला और बच्चेको दिखलाये। सरलाने कई जीव-जन्तु तो एक बार पहिले देखे थे, परन्तु कई उसने भी नहीं देखे थे, जिनको देखकर उसे भी कौतूहल हुआ, परन्तु उनको इस बातसे बहुत हर्ष हुआ कि बच्चा प्रत्येक जीवको देखकर, बड़ा प्रसन्न होता और हर एक जीवका नाम पूछता और यह भी बड़ी प्रसन्नतासे प्रश्न करता कि 'पिता यह जीव कहां होता है,

क्या खाता है, क्या २ काम करता है।' सुबोध और सरला उसको बतलाते—"इसका यह नाम है,यह इस प्रकार खाता है।"

अन्तमें बागमें जितने जीव थे सब बच्चे और स्त्रीको दिखला समझाकर सुबोध गाड़ीमें आरूढ़ हुए। उस समय इनको कुछ क्षुधा प्रतीत हुई। सबने कुछ थोड़ा थोड़ा खाकर जलपान किया और वहांसे चल दिये। मार्गमें सरलाने सुबोधचन्द्रसे कहा कि पहले जब मैंने देखा था तब तो इतने जीव नहीं थे, आजतक गैंड़ा मैंने नहीं देखा था। दो तीन और भी नये प्रकारके जीव हैं। वनमानुष कैसा सुन्दर बन्दर है। मनुष्यके सदृश हाथ हैं और कैसे सुन्दर हंसता है!

इस प्रकार हंसते खेलते वह सब अलीपुरसे जादूघरमें पहुंचे और वहांपर अनेक जीव-जन्तु और कई अन्य वस्तुयें देखीं जिनसे उनके ज्ञानकी वृद्धि हुई।

स०—यह तो ठीक है कि इस प्रकार अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। हमारे सरीखे निर्धनोंके लिये इतने पैसे व्यय करने कठिन हैं। परन्तु जो हमसे भी निर्धन हैं वह बेचारे क्या करें?

सु०—उन मनुष्योंके लिये ज्ञान-प्राप्तिका सुगम उपाय यह है कि वे ऐसी पुस्तक जिनमें इन जीव-जन्तुओंका वर्णन हो घर बैठे पढ़कर अपने बालकोंको चित्रोंको दिखलाकर इनके वर्णन सुनावें और समझावें। विलायतमें तो खेल और खानेमें बच्चोंको वर्णमाला सिखा देते हैं।

स०—वह कैसे?

तेरहवां परिच्छेद।

सु०—अंग्रेजी अक्षर सिखानेकी ताश होती है। बच्चेको हंसा खिलाकर उससे पूछते हैं—"B, N, P, और X निकालो।" बच्चे तलाश करके सब पत्तोंमेंसे वह पत्ते निकाल लेते हैं और उनको बड़ा आनंद होता है। कई बार पूछते हैं—"तुम क्या खाना चाहते हो?" वहां ऐसे मिठाईके टुकड़े बनाये जाते हैं जिनपर A, B, C आदि सब अक्षर लिखे होते हैं। बच्चा कहता है—"मैं दो A, दो B और दो M लूंगा।" पिता मिठाईका डब्बा आगे कर कहता है—"इसमेंसे निकाल लो। बच्चा स्वयं पहिचानकर निकाल लेता है।

स०—यह प्रणाली तो अक्षर-बोधके लिये बड़ी अच्छी जान पड़ती है।

इस प्रकार वार्तालाप करते २ सुबोध अपने घरमें पहुंचे। मार्गमें बच्चा सो गया था। घरमें आकर बच्चेकी आंख खुली। वह जाग उठा। सायंकालको गोपाल बाबू प्रभृति कई मित्र सुबोधचन्द्रके घर आये। तब बच्चेने अपने नये ज्ञानका भंडार उनके आगे खोल दिया। गोपाल बाबूको देखते ही बच्चा नाचते २ उनसे कहने लगा, "आज मैंने बहुतसे बंदर देखे थे, बाघ देखे थे और शेर देखे थे। शेर तो मनुष्यको खा जाता है।"

गो०—और क्या देखा था?

बच्चा—और सांप देखा था। उसके पास नहीं जाना। वह काट लेता है। मनुष्य मर जाता है। मुझको उससे भय लगता था।

गो०—फिर और क्या तुमने वहां देखा था?

बच्चा—"मैंने वहां कई पशु-पक्षी देखे थे । पक्षी तो बड़े खेल करते थे । एक प्रकारके पक्षी तो मुख ऊंचा करके बोलते थे, उड़ते थे, अपनी ग्रीवा नीचे ही नहीं करते थे ।" वहींपर राम बाबू सुबोधका मित्र बैठा था । उसने बच्चेको गोदीमें उठा बड़े प्यारसे पूछा,—"वहां और क्या तुमने देखा था ?" बच्चा,—"वहांपर एक घरमें बहुतसे बंदर थे । वह पत्ते बिछाकर सोये पड़े थे । मैंने उनको चने डाले थे । उन्होंने झट दोनों हाथोंसे खा लिये थे ।"

रा०—तुम उनमेंसे एक तो घर ले आते । और एक तुम्हारे जैसे हाथ पांववाला था, उसका क्या नाम था ?

ब०—उसका नाम बांद्र था ।

रा०—उसको बानर तो नहीं कहते ।

ब०—तो और उसका क्या नाम था ?

रा०—उसको बनमानुष कहते हैं ।

ब०—उसे बनमानुष कहते हैं, तो बनमानुष क्या करता है ?

रा०—बनमानुष बनमें रहता है । वहांके वृक्षोंके फल खाता है ।

ब०—नहीं, वह बनमें तो नहीं रहता । वह तो बागके घरमें रहता है । आप नहीं जानते, मैं तो आज देखकर आया हूं ।

रा०—बनहीसे पकड़कर उसे बागघरमें ला रक्खा है ।

ब०—मैंने उससे बड़ा खेल किया था, उसको खानेको दिया था, उसका खाना मुझे बहुत भाता था ।

इस प्रकार अपने नये ज्ञानका अपने घरमें आकर वर्णन करना सुन सुबोध और सरला मनही मन बड़े प्रसन्न होते थे ।

तेरहवां परिच्छेद ।

भोजनके अनन्तर जब सुबोध और सरला बैठे तो सरलाने कहा कि कल आपने ठीक कहा था, बच्चेको इस प्रकार बड़ा ज्ञान प्राप्त होता है ।

स०—बच्चोंकी शिक्षाकी यह बड़ी उत्तम रीति है ।

सु०—इस प्रकार देखो, बच्चेने कितने अन्य जीव-जन्तुओंके नाम और उनके विषयमें ज्ञान प्राप्त किया है । कौन जीव कहां रहता है, क्या खाता है, क्या करता है; यह सब बच्चा सीख लेता है ।

स०—ज्ञान-प्राप्तिके विषयमें और भी तो कोई रीति वर्णन करें ।

सु०—बहुत दिन हुए मैंने कहा था कि धर्म्म-नीति, साधुता, स्नेह और सदाचारपूर्ण प्राचीन कहानियां सुनाकर बच्चेको समझानी चाहिये । इससे बढ़कर अन्य कोई सुगम उपाय बच्चोंको इतने कठिन विषय समझानेके लिये नहीं है ।

स०— अच्छा, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ानेका कोई और उपाय हो तो कहें ।

सु०—बुद्धि और विचार-शक्ति भिन्न भाव हैं । इनकी आलोचना करनी कठिन है । बच्चोंके लिये तो यह और भी कठिन है । बुद्धिके भीतर विचार-शक्ति और विचार-शक्तिके भीतर बुद्धि है । बुद्धिमान् लोग ही विचारक और विचार-निपुण पुरुष ही बुद्धिमान् कहाते हैं ।

चौदहवां परिच्छेद।

सु०—तुमने देखा होगा कि बाल्यावस्थासे ही बच्चेमें मनोभिलषित और सौन्दर्य्य जाननेकी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। कौन सी वस्तु सुन्दर कौनसी कुरूप है, शिशु बच्चा ही यह सब समझने लग जाता है। बच्चा सुन्दर वस्तुको दूरसे देख उसके निकट जानेकी कामना करता है और जिस वस्तुके सौन्दर्य्यका उसे बोध नहीं होता या जिसको वह उत्तम नहीं समझता उसके पास जानेकी इच्छा ही नहीं करता, और यदि आग्रहसे पास ले भी जावें तो रुदन करने लगता है। एक ओर सादा और एक ओर लाल रंगका फूल हो; एक ओर चमकती हुई मोहर और दूसरी ओर मैलासा पैसा हो, एक ओर मैना और दूसरी ओर काग पक्षी हो, एक ओर रंगीन वस्त्र और दूसरी ओर सादे कपड़े हों तो इनमें जो सुन्दर वस्तुएं होंगी उन्हें ही बच्चा ग्रहण करेगा। यह निर्धारण करनेकी सामर्थ्य बच्चेकी बुद्धिमत्ताकी पहली सीढ़ी है। एक वस्तुकी दूसरी वस्तुकी तुलनासे ही विचार-शक्ति और बुद्धिका विकाश होता है। बालककी बुद्धि और विचार-शक्तिकी जांचके लिये माता-पिताको बड़ी सावधानी करनेकी आवश्यकता है।

स०—ऐसे उपाय अब बतलाइये जिनसे बच्चोंकी बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़े।

सु०—बच्चेको एकान्तमें ले जाकर माता गीत गाना आरंभ करे और समाप्तिके अनन्तर बच्चेसे वही सुने। और यदि बच्चा बाजा सुने और पितासे कहे कि "पिताजी, आज मैंने बाजा सुना है बाजा" तो इससे प्रतीत होगा कि बच्चेको गाना बजाना अच्छा लगता है। कल या परसों जो कुछ बच्चेने खाया हो उससे पूछा जावे कि कल क्या खाया था और आज क्या खाना चाहते हो। जो जो वह कहे समझ लो कि बच्चा उसी उसी वस्तुको अच्छा समझता है और उसे वही वस्तु भाती है। ऐसा करनेसे भी बच्चेकी बुद्धि और ज्ञानकी वृद्धि होती है।

दूसरे दिन बच्चेको बुलाकर कहा—"बच्चा वह चौकी उठाकर ले आओ।" बच्चेने बड़े हर्षसे वह चौकी लाकर पिताके आगे रख दी। सुबोधचन्द्रने फिर कहा "पुत्र! वह बड़ी चौकी भी उठा लाओ।" बच्चा बड़े हर्षसे उठाने लगा, परन्तु चौकी भारी थी जिसको वह सुगमतासे उठा नहीं सकता था। इसलिये पितासे कहने लगा, "पिताजी यह चौकी भारी है, मुझसे उठाई नहीं जाती।" सुबोधचन्द्रने कहा—"मेरे वीर पुत्र, उठा लाओ, यत्न करो, तुम उठा लोगे। यदि ले आओगे तो तुमको एक आम मिलेगा।" पिताके इन वचनोंको सुन पुत्रने फिर एक बार उठानेका प्रयत्न किया और येनकेन प्रकारसे उसे द्वारतक ले आया। परन्तु द्वारसे बाहर निकालना उसके लिये बड़ा कठिन प्रतीत होता था। इसलिये पिताजीसे कहने लगा—"महाराज! यह चौकी फंस गई है, द्वारसे बाहर नहीं निकलती।"

सुबोध—"शाबास वीर, शाबास! प्रयत्न करो, मैं तुमको एक आम, एक संदेस और एक खेलनेका खिलौना उपहारमें दूंगा। यदि तुम चौकी मेरे पास ले आओगे तो।" यह सुन बच्चा बड़े परिश्रमसे प्रयत्न करने लगा और बड़ी कोशिश और कौशलसे चौकीको एक ओरको झुकाकर द्वारसे बाहर कर ही लिया और चौकी पिताके पास ले ही आया। पिताने बड़े आनन्दसे उसका मुख-चुम्बन किया और उसको उपहारकी चीजें दीं। बच्चा इस प्रयत्न करनेसे पसीना पसीना हो गया। माताने यह देख तौलियेसे उसका मुख पोंछा। उपहारकी वस्तु पा बच्चा बड़ा आनन्दित हुआ और नाचने लगा।

सुबोधचन्द्रने सरलाको बुलाकर कहा—सरले! देखा, अति परिश्रमसे मनुष्य हिमालयकी चोटीपर चढ़ सकता है, डूबती हुई नौका बचा सकता है और कार्य्य-सिद्धिसे जैसा आनन्द पाता है या जैसे अग्निसे जलते हुए घरमेंसे माता अपने पुत्रको निकाल-कर प्रसन्न होती है यह बच्चा वैसे प्रसन्नता लाभ कर रहा है। जिस प्रकार सेनापति शत्रु पर विजय पाकर फूला नहीं समाता ठीक वैसे ही यह बालक आनन्द अनुभव कर रहा है।

तुमने देखा था कि वह पहिली चौकी ले आया था, दूसरी चौकी लाते समय इसने कहा था कि यह चौकी भारी है, परन्तु पुरस्कारका नाम सुन इसने कैसे परिश्रमसे कोशिश की और अपने कार्य्यमें सफलता प्राप्त की। चौकी बाहर मुझ तक ले ही आया और अब पुरस्कार पाकर किस प्रकार नांच रहा है।

ऐसा करनेसे बच्चा न्याय-अन्याय, भला-बुरा समझने लगता है। सुख-दुःख, सरदी-गरमी आदिको सहने सीख लेता है और अनेक प्रकारकी वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त कर लेता है। यदि पिता-माता स्वयं ज्ञानवान् और बुद्धिमान् हों तो वे बच्चेको भी ऐसे २ उपायों द्वारा सहजमें ज्ञानवान् और बुद्धिमान् बना लेते हैं।

पंद्रहवां परिच्छेद ।

सायंकालका भोजनादि कर सरला सुबोधचंद्रजीके पास जाकर प्रार्थना करने लगी कि "आपने शिशु-शिक्षा-विषयक बच्चे की बुद्धि और ज्ञानके विषयमें जो वर्णन किया है वह तो मैं भली भांति समझ गई, परन्तु आजतक अपने बच्चोंके हृदयमें गुण उत्पादक कोई नियम नहीं कहा, कृपाकर आज आप वह वर्णन कीजिये।"

सु०—तुमको याद होगा कि कल एक कुष्टी भिखारी द्वारपर आकर भिक्षा मांग रहा था। उसे देखकर यह मेरे पास भागता आया था और मुझसे कहने लगा था कि "बाबा पैसा दो, बाबा पैसा दो।" जबतक मैंने पैसा दे नहीं दिया इसने आराम नहीं किया। पैसा लेकर उसने भिखारीको दिया। इससे प्रतीत होता है कि उसके हृदयमें दुःखियोंपर दयाका भाव उत्पन्न हुआ है। यह कैसे हुआ तुम जानती हो?"

स०—मुझे मालूम नहीं, आपही कहिये।

सु०—एक दिनका वृत्तान्त है कि मुझे ऐसे एक पुरुषको देख परम क्लेश हुआ। मेरे नेत्रोंसे जलधारा बहने लगी। मैंने उसको २ पैसे दिये थे। उस सयय यह बच्चा मेरे साथ था। उस दिन मेरी यह दशा देख बच्चेके हृदयमें दुःखी पुरुषोंपर दया करनेका भाव उत्पन्न हो गया।

स०—ठीक है, इसीलिये एक दिन एक भिखारीको द्वारपर देखकर इसने आकर मुझे कहा था—" मां, भिक्षा दो, भिक्षा दो।"

सु०—यदि कोई बन्धु घरमें आवे और उसको प्रेमसे भोजन खिलाया जाय तो इसे देखकर बच्चा भी दूसरोंको खिलाना सीख जाता है। एक दिन मैं एक मित्रके घर गया। बच्चा मेरे साथ था। उन्होंने बच्चेको १ आम और २ संदेस दिये। आते हुये मार्गमें वसुके वृद्ध पिताजीसे भेंट हुई। उन्होंने इससे आम लेनेकी इच्छा प्रकट की। इसने झट उनके हाथपर रख दिया। फिर उन्होंने संदेस लेना चाहा, इसने एक उनको दे दिया। फिर उन्होंने दूसरा संदेस मांगा। उसने उन्हें न दिया। इतनेमें एक अपरिचित साधु-प्रकृति पुरुषने यह देख दूसरा संदेस बच्चेसे मांगा, इसने उन्हें झट दे दिया। फिर उन्होंने वह सब इसे फेर दी। यह लेकर आनन्दसे खाने लगा।

स०—यह बालक तो मेरी समझमें अपने पराये सबको अपना बंधु समझता है।

सु०—एक और बात मैं वर्णन करता हूं। इससे तुम्हारे सुकुमार बालकके हृदयमें धीरे २ सद्भाव उत्पन्न हो सकता है।

स०—शीघ्र कहिये।

सु०—आज तुम्हारे घरके समीप ही एक मनुष्य रो रहा था। उसे देख उसके पास जाकर उसको चुप कराने लगा। जब चुप न हुआ तो यह बच्चा दौड़कर मेरे पास आ कहने लगा, "पिताजी!

बेदाना रोता है, बेदाना रोता है। यह वही बेदाना रोता है जो हमारे घरके पास बेदाना बेचने आता है।" मैंने जाकर उसे तसल्ली दी और पूछा तो उसने आंखोंका जल पोंछकर कहा, "बाबूजी! मेरे पिताका देहान्त हो गया है, मैंने अन्त समय उनकी सेवा नहीं की और न उनके दर्शन ही कर सका हूं। इसी बातका मुझे बड़ा दुःख हुआ है और मैं रोता हूं।" इसका सद्भाव देख रोते २ ही उसने बच्चेको प्यार किया। भाव यह है कि माता-पिताके स्वार्थ-त्यागसे बच्चेमें भी वैसे ही सद्भाव उत्पन्न हो सकते हैं और दयाके भाव उत्पन्न हो आते हैं।

स०—मेरे विचारमें यदि घरपालित पशु-पक्षियोंसे माता-पिता अच्छा व्यवहार करें अर्थात् उनका पालन-पोषण भली भांति करें तो बच्चा मनुष्यमात्रपर ही नहीं वरंच पशु-पक्षियोंपर भी दया करना सीख जाता है।

सु०—यह तुम ठीक कहती हो।

इतनेमें रात्रि अधिक चली जानेसे वह सब सो गये और फिर कई दिनतक सुबोध और सरलाको इस विषयमें वार्तालापकी आवश्यकता न प्रतीत हुई, किन्तु वह अपने पुत्रमें बुद्धि, ज्ञान, विचार-शक्ति और दया-भाव उत्पन्न करनेके लिये स्वयं पूर्वोक्त नियमोंपर चलनेमें पूर्णरूपसे प्रयत्न करते रहे, जिसका फल यह हुआ कि बच्चेमें यह सब गुण अपने आप प्रकट होने लगे।

एक दिनका वृत्तान्त है कि इनके आंगनमें एक चिड़ियाका छोटासा बच्चा जख्म हुआ पड़ा था। अभी उसकी मृत्यु नहीं हुई

थी। वह चीं चीं कर रहा था। सुबोधचंद्रका पुत्र अभी सोकर उठा ही था, आंखें मलता २ जब आंगनमें आया और चिड़ियाके बच्चेकी यह दशा देखी तो इसने मनमें यह विचारा कि यदि इस बच्चेको इसकी मांके पास पहुंचाया जाये तो इसकी रक्षा हो सकती है। यह विचार चिड़ियाका घोंसला ढूंढ़ने लगा। इतनेमें एक बिल्लीने आकर उसे पकड़ लिया और उसे ले भागी। यह देख बच्चेको बड़ा खेद हुआ और सरलाके पास जा पुकारने लगा, "मांजी! चिड़ियाका बच्चा बिल्ली खा गई।" उसकी माता सरलाने दौड़कर छुड़ानेका प्रयत्न किया परन्तु वह भी कृतकार्य्य न हो सकी और बिल्लीने बच्चेको मार डाला। यह देख बच्चेको अतीव क्लेश हुआ। यहांतक कि सारा दिन बच्चेका हृदय अतीव खेदित रहा और जो उनके घरमें आता उससे यह कहता कि "बिल्ली बड़ी दुष्ट जीव है, वह चिड़िया खा जाती है।"

माता-पिता तथा अपने अन्य सम्बन्धियोंके आचार-व्यवहारसे ही बच्चोंमें सद्भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

बहुत दिनोंके अनंतर फिर एक दिन सरलाने सुबोधचंद्रजीसे कहा कि जब बच्चा तीन चार वर्षका हो तो फिर माता-पिताको क्या करना चाहिये, कृपया कथन कीजिये।

सु०—इस अवस्थामें बच्चेके पहुंचनेपर माताको उचित है कि बच्चेमें पारिवारिक प्रेम और ईश्वर-भक्तिका बीज बोनेका उपाय करे।

स०—वह क्या उपाय है, वह भी कृपाकर वर्णन कीजिये।

सु०—छोटे छोटे भजन, भक्ति, स्नेह और ममताके गीत रच-कर बच्चेको कंठ कराने चाहिये ।

स०—कृपया एक दो नमूनेके रीतिपर गीत भी कह दीजिये ।

सु०—अच्छा सुनोः—

भजन ।

तुम ही ब्रह्म सनातन विश्वपति ।
तुम ही आदि अनादि अनन्त गति ॥
तुम ही सत्य-स्वरूप पुण्यमय हो ।
तुम ही सकल जगतके आश्रय हो ॥
तुम ही सब सृष्टिके कारण हो ।
भय शोक ताप दुखहारन हो ॥
तुम हो मंगल मय मनमोहन हो ।
तुम ही सुन्दर स्वरूप प्रलोभन हो ॥
तुम ही हे प्रभु विघ्न-विनाशन हो ।
हितकारी तुम ही निज दासन हो ॥
तुम ही करुणामय गुणसागर हो ।
वही करुणा मुझ पापी पै करो ॥
ख्वाह पापसे मरता भी हो कोई जन ।
तेरी शरण लिये पाये नवजीवन ॥
भवसागरसे बचनेके लिये ।
निज करुणाकी नौका दीजिये ॥

भजन ।

जय जय जननी आनन्दरूपिणी ।

मङ्गलकारिणी विपतनिवारिणी, भवभयहारिणी मुक्तिप्रदायनी ।

मोह पाप सन्ताप विनाशनी, निर्मल सुन्दर नवजीवन दायनी ॥

धन्य दयामयि धन्य तेरी महिमा, पतित जन पावनी असुर-प्रहारिणी ।

धर्मविधायनी आनन्ददायनी, प्रेममयी मा भगत मन रञ्जनी ॥

भजन ।

हरि करुणामय हरि करुणामय, तुमही सबके परम आश्रय ।

विचित्र तुम्हारी रचना है प्रभु, पूरण हरि हरी महिमालय ॥

अपार स्नेह लिये नित पालत, सकल जीव तुम्ही मंगलमय ।

जय करुणामय घन हरि तुम, जय २ हरि २ जय जय जय ॥

बितरत प्रेम सदा दीननपर, धन्य दयामय हरि प्रेमालय ।

भजन ।

आत्माके प्राण हरि, जीवनके जीवन ।

मेरे तुम ही सबसे बड़े, प्रभुजी अवलम्बन ॥

मेरे भीतर तुम्हीं जब, प्रकाशो निरंजन ।

आत्मा पाय सुख और बल, हों क्लेश-भंजन ॥

निराशा और दुःख विषाद, होवे सभी मोचन ।

आशा बल देओ ज्योति, देओ जब परमात्मन ॥

आरती

जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे ।

प्रेमदान मोहे दीजे, करुणा दृष्टि करे ॥ जय जगदीश हरे ॥

प्रेम पदार्थ पाकर महिमा तब गाऊं । (हे प्रभु) महिमा तव गाऊं ।
जगत विषय सब भूलूं, तुमसों चित लाऊं । जय जगदीश० ।
नित निति हो उत्साही, तेरो ही ध्यान धरूं ॥
(हे प्रभु) तेरो ही ध्यान धरूं । निश दिन तव गुण गाऊं ।
तेरी ही शरण पड़ूं । जय जगदीश हरे ॥
कृपा यही तुम्हारी, निज भक्ति दीजे । प्रभु निज भक्ति दीजे ।
दीन हीनकी बिनती, इतनी सुन लीजे । जय जगदीश हरे ।
विश्वासी अति दुर्बल, शरण पड़ा तेरी । (प्रभु) शरण पड़ा तेरी ।
पाप तापसे रक्षा, करो प्रभु मेरी । जय जगदीश हरे ॥

स०—यह भजन तो बड़ा सुन्दर है ।

सु०—यह तुम बच्चेको पहिले सिखा लो, फिर एक दो मैं और तुमको पढ़ा दूंगा, वह फिर कंठ करा देना ।

सोलहवां परिच्छेद

कुछ दिनोंके अनंतर सायंकालके समय सुबोधचंद्रजीने सरलाको बुलाकर कहा कि शिशु-शिक्षा संबन्धी जो वर्णन मैंने तुमको सुनाया है, इतनेमें ही यह समाप्त नहीं हो गया। जीवनपर्य्यन्त माता-पिताको पुत्र-शिक्षा देनी उचित है। इसलिये तद्विषयक और भी उपाय वर्णन करता हूं, सुनो।

यह भली भांति परीक्षाद्वारा निर्धारण हो चुका है कि शरीर और मनका बड़ा घनिष्ठ संबंध है। शरीरके स्वस्थ होनेपर ही मन प्रसन्न रहता है और मनकी प्रसन्नता और शांतिपर ही मनुष्यका बल और विक्रम निर्भर है। इसलिये जिस प्रकार बच्चोंका शरीर आरोग्य रहे और छोटे २ बच्चे माताकी गोदीमें ही हृष्ट-पुष्ट हो जायें इसपर विचार करना है। जिस प्रकार आकाश पक्षियोंसे तथा वाटिका पुष्पोंसे सुशोभित होती है ठीक इसी प्रकार आरोग्य बच्चेसे गृह शोभायमान होता है। इसलिये जिस प्रकार आरोग्य अवस्थामें बालक घरमें नाचता फिरे वह उपाय करना आवश्यक है।

पुत्र अथवा पुत्री यदि साहस और विक्रमसे घरके आंगनमें खेलता हुआ भागता फिरे; तो उसकी चाहना और स्वतंत्रताको बढ़ाते हुये उनकी बुद्धि और ज्ञान बढ़ानेके लिये भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। बच्चोंके खेलमें साथ देनेसे उनमें सद्गुण सहज

ही उत्पन्न किये जाते हैं। खेलमें जो शिक्षा बच्चेको मिलती है उसका बच्चेपर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

६० वर्ष का बुड्ढा भी बाल्यावस्थामें संग्रहीत ज्ञानको नहीं भूलता। कौन ऐसा व्यक्ति है कि जिसको बाल्यावस्थामें पठित श्लोक यौवन दशामें याद आनेपर आनन्द न होता हो? कोई बालक यदि पढ़नेमें असमर्थ हो और पढ़नेमें मन भी न लगाये तो उसको बाल्यावस्थाका अपना चरित्र अथवा अन्य वीर धर्म्मात्मा-ओंके बाल्यावस्थाके चरित्र सुनाना बड़ा लाभदायक होता है। झिड़कने और मारनेसे जो भय और भीरुता बालकमें उत्पन्न हो जाती है उससे बच्चेकी बुद्धि और ज्ञानकी भी हानि होती है और बच्चा ढीठ भी हो जाता है। परन्तु वृद्धोंसे बाल्यावस्थाके कंठस्थ श्लोक सुन उनमें पढ़नेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाती है और उनकी स्मरण-शक्ति भी बढ़ती है।

बहुतसे बालक मारके भयसे सत्य बातको छिपाते हैं। यदि उनको यह निश्चय हो कि मुझे मार नहीं पढ़ेगी तो एक तो वह झूठ बोलना न सीखें, दूसरे यदि उनसे कोई अपराध हो जाये तो वह लज्जाके मारे सिर न उठायें और बिना मारके ही वे आंसू बहा पश्चात्ताप करें।

संतानको यदि यह निश्चय हो जाये कि मेरे माता-पिता मेरी भलाईके लिये प्रयत्न करते हैं और मेरे हित-साधन निमित्त अपने संपूर्ण सुखोंका त्याग कर बैठे हैं, तो वे स्वयं कुकर्म्मोंको छोड़ माता-पिताके क्लेश दूर करनेका उद्योग करें। इस प्रकार तुम्हारा

बच्चा स्वयमेव सब काम करता है परन्तु जो बात उसके लिये नई होती है, उसीके लिये तुमसे और मुझसे पूछता है। इसीसे प्रतीत होता है कि वह तुमको और मुझको ही अपना परम हित-कारी समझता है। यह क्यों? इसलिये कि उसे पूर्ण विश्वास हो गया है कि हम दोनोंसे बढ़कर और कोई भी उसका इस संसारमें हितचिन्तक नहीं।

सार यह है कि अपना घर ही सन्तानके लिये पाठशाला है और माता-पिता ही इस पाठशालाके मुख्य अध्यापक हैं। यदि इस पाठशालाके अध्यापक ऐसे दास-दासी हों जो न तो बालकके रुधिरसे संबन्ध रखते हैं और न बुद्धिमान ही हैं तो निस्संदेह संतान सद्भावयुक्त, साधु-चरित्र और देशके लिये कल्याणकारी नहीं बन सकती। बड़े २ सुयोग्य, बुद्धिमान और धर्म्मशील तथा धनवानोंकी संतान जो प्रायः कुमार्गगामी, दुष्ट-प्रकृति निकलती है उसका मुख्य कारण यह है कि उनकी संतान अपवित्र और स्वार्थी दास-दासियोंकी गोदियोंमें लालन-पालन पाती है।

यदि माता-पिता चाहें कि हमारी संतान सच्चरित्र, विद्या-विशारद, लोकमान्य, स्वतंत्र और धर्म्मात्मा हो तो वे अपनी संतानको मूर्ख, निर्गुण, स्वार्थपरायण सेवकोंकी गोदीमें पलनेसे बचायें। यदि स्वयं इतना समय न दे सकें और किसी कारणसे परिश्रम न कर सकें, तो चतुर, बुद्धिमान और धर्मशील दास-दासी रखनेकी परम आवश्यकता है। परन्तु ऐसे सेवकोंका मिलना बहुत कठिन है। आजकलके नौकरोंके हाथसे बच्चोंके लालन-

पालनसे ही पारिवारिक शान्तिका नाश हो रहा है और बड़े २ खानदान भी नष्ट हो रहे हैं; क्योंकि ऐसे दास-दासियोंकी शिक्षासे बालक अवगुणसंयुक्त, दुराचारी और भ्रष्ट-प्रकृति हो जाते हैं।

स०—सत्य है, यदि घरके वृद्ध भले न हों तो परिवारमें शान्ति नहीं रहती, बच्चे मनुष्य नहीं बन सकते क्योंकि बालकको मनुष्य बनानेके लिये जिन २ बातोंपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है उन सबपर ध्यान दिया ही नहीं जा सकता।

सु०—तीन चार वर्षके बालकको जिस प्रकार शिक्षा देनी चाहिये उसका तो मैंने अपने ज्ञान और बुद्धि अनुसार वर्णन कर दिया है। अब यदि कुछ और कहनेकी आवश्यकता होगी तो फिर समय २ पर तुमको समझा दूंगा। मुझे पूर्ण आशा है कि इसी प्रकार यदि मातायें अपने बच्चोंके पालन-पोषणमें प्रयत्न करेंगी तो भारत-संतान अवश्य ही अपने वंश और देशके लिये कल्याणकारी होगी। ईश्वर करे कि मेरी और तुम्हारी यह अभिलाषा पूर्ण हो! तुम भी सवेरे शाम ईश्वरसे यही प्रार्थना करना कि हे जगत्पिता जगदीश्वर! आप मेरे इस पुत्रको सद्बुद्धि-युक्त, सदाचारी और ज्ञान-संपन्न बनायें और मेरी कामना पूर्ण करें।

स०—आपने कल जो एक दो भजन छोटे छोटे बच्चोंको सिखलानेके लिये हमें बतलानेको कहे थे वह तो बतला दीजिये।

सु०—कल जब मैं सायंकालको दफ्तरसे आया तो यह बच्चा अकेले बैठे बड़े मधुर स्वरसे गा रहा था, मैं एक कोनेमें छिपकर सुन रहा था।

स०—हां, मैंने वह गीत जो आपने मुझे सिखाया था इस बच्चेको कंठ करा दिया था।

सु०—बहुत अच्छा किया।
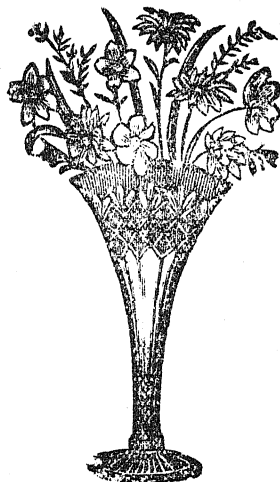
उपसंहार।

सुबोधचन्द्रने सरलासे कहा,—"इस संसारमें माता-पिता बननेसे पहिले,किस प्रकार आचार-व्यवहार धारण करना चाहिये जिससे सुपात्र संतानके माता-पिता बन सकें, संतानके उत्पन्न होनेपर क्या २ उपाय करने चाहिये अर्थात् किस प्रकार सन्तानका पालन-पोषण होना चाहिये—यह मैंने अपने ज्ञानके अनुसार आज-तक तुमको बतला दिया है। इनपर न चलनेसे ही भारत-सन्तान-की यह दुर्दशा हो रही है। सरला! अब तो तुम समझ गई होगी कि इन नियमोंपर न चलनेसे भारतवर्षीय नर-नारी अपनी कितनी हानि कर रही हैं। इस संसारकी समस्त घटनायें ईश्वरकी इच्छा और अभिप्रायके अनुसार होती हैं। आह! वह किस प्रकार माता-पितामें मोहरूपी जाल फैलाकर बच्चोंका पालन-पोषण कराता है। शिशु-संतानमें जैसी करुणा और उनके मंगलकी कामना माता-पितामें पाई जाती है ऐसी और कहीं नहीं पाई जाती।

माताकी गोदीमें लेटकर दूध पीते हुए प्रसन्न वदन माताके मुखकी ओर देखते हुए बच्चेको देखकर भक्तजन उस परमात्माकी उज्ज्वल कीर्त्ति और महिमाका अनुभव करते हैं। किस प्रकार बालक पहिले बोलना सीखता है, कैसे फिर धीरे २ ज्ञान, विचार आदि सीखता है, यह सब देख उस ईश्वरको धन्यवाद कर अपने आपको कृतार्थ समझो और बच्चेको मनुष्यत्व प्राप्त करानेसे ही अपना जन्म सफल समझो।

इति।

* माता और पुत्र *

द्वितीय भाग।

पहला परिच्छेद।

कैसा सुन्दर दृश्य है। पांच वर्षका सुकुमार बालक ताली बजा बजाकर गीत गाता हुआ अपनी तीन चार मासकी बहिनको खिला रहा है, बहिन छोटेसे भंगूड़ेपर पड़ी २ हाथ पांव मार रही है। सरला भोजन बनाकर अपनी कन्याकी सुध लेने आई है और पुत्रकी यह क्रीड़ा देख मुग्ध हो चुपके २ छिपकर देख २ कर आनन्दित हो रही है।

इतनेमें सुबोधचन्द्रजी जब भी दफ्तरसे घर पहुंचे तो यह दृश्य देख बड़े प्रसन्न हुये। उनको आते देख सरला बड़ी प्रेम-भरी चितवनसे उनकी ओर देख मुसकराती हुई, मानो उस दृश्यको देखनेके लिये प्रार्थना करती है। यह विचित्र दृश्य देख सुबोधचन्द्रजीसे रहा न गया। वह तत्काल आगे बढ़े और पुत्रका बड़े प्रेमसे मुख-चुम्बन किया।

सत्य है, इस दुःखसागर असार संसाररूपी वृक्षके यही मनको लुब्ध करनेवाले फल हैं। इन्हीं मनके आह्लादित करनेवाले दृश्योंसे मनुष्य गृहस्थके नाना प्रकारके क्लेशोंको क्लेश समझता ही नहीं।

सुबोधचन्द्रजीके आनन्दकी सीमा न रही। बच्चेको गोदमें उठाकर पूछने लगे, "बेटा! यह क्या गा रहे हो?"

पुत्र—मैं अपनी छोटी बहिनको खिला रहा हूं; माताजी इसको अकेली यहां डाल गयी थीं।

सु०—पुत्र! लाओ इसे मैं उठा लेता हूं।

पुत्र—नहीं पिताजी, इसे माताजी उठायेंगी, वह इसको दूध पिलायेंगी, आप न लें।

पिता—बहुत अच्छा, जैसा तुम कहो वैसा ही करूंगा।

भोजनादि पाकर जब सरला अपने स्वामीजीके कमरेमें आई तो क्या देखती है कि वह दत्तचित्त हो पुस्तक पढ़ रहे हैं। यह देख वह सामने खड़ी रही। कुछ कालके अनन्तर जब सुबोध-चन्द्रजीने देखा तो मुसकराकर कहने लगे—"यह पहरेदार क्यों खड़ा है?"

स०—नहीं महाराज! मैं इसलिये खड़ी हूं कि, आपकी वृत्ति खिन्न न हो। मैं एक प्रार्थना करनेको आई हूं।

सु०—कहो, क्या बात है?

स०—ईश्वरकी कृपासे अब तो मैं दो बच्चोंकी माता बन गई हूं, अब तो सन्तान-पालनका दुगुना बोझ मेरे सिरपर आ

पड़ा है। आजतक जो शिशु-शिक्षा विषयक आपने उपदेश दिया है और जो कुछ मैं समझी हूं उसका अपनी ओरसे तो पूर्ण पालन कर रही हूं। आप तो इसमें कोई त्रुटि नहीं देखते ? कृपा करके इस विषयमें आप और शिक्षा दें। और यह भी मैं कह देना अनुचित नहीं समझती कि मैं आपको बतला दूं कि दो बच्चोंकी शिक्षा यथाविधि मुझसे पूर्ण नहीं होती।

सु०—तुमको स्मरण होगा, मैंने पहिले ही कहा था कि वह सब गुण और अवगुण जो माता-पितामें होते हैं बच्चोंमें अपने आप कुछ न कुछ आ जाते हैं। जो प्रकृति मेरे बाबाजीकी थी उसीके सदृश मेरे पिताजीकी थी। पिताजीकी प्रकृतिका प्रभाव मेरेमें झलक रहा है। सार यह है कि गुण और अवगुण वंश-परम्परासे मनुष्यमें आ जाते हैं। परन्तु सद्गुण पूर्ण रूपसे नहीं आते, वह कुछ न कुछ कम होते जाते हैं। इसलिये निज इच्छानुसार फल-प्राप्ति कोई सुगम काम नहीं। जो सद्गुण मनुष्य सन्तानमें देखना चाहता है वह गुण मनुष्यमें अपनेमें नहीं हों तो फिर सन्तानमें कैसे आ सकते हैं ?

एक और विशेष कारण यह भी है कि जब बालक घूमने फिरने लग जाता है, इस घरसे उस घरमें आना जाना सीख जाता है और अन्य बालकोंसे खेलना सीख लेता है, तो माता-पिताके इच्छानुसार शिक्षा पाना अतीव कठिन हो जाता है। ऐसी दशामें माता-पिताका परम कर्त्तव्य यह है, कि वह इस बातपर विशेष ध्यान रक्खें कि वह कैसे बालक हैं, जिनके साथ

हमारे बच्चे खेलते हैं, क्योंकि एकसी आयुके बच्चोंका प्रभाव बालकोंमें अवश्य आ जाता है अर्थात् सङ्गतका असर बड़ी जल्दी बच्चोंकी प्रकृतिपर पड़ता है।

स०—सत्य है, परन्तु ऐसा करना हमारे जैसे लोगोंके लिये बड़ा कठिन है, क्योंकि हम सरीखे लोगोंका बहुतसा समय तो घरके काम-काजमें व्यतीत हो जाता है। आपको दफ्तर जाना होता है जहां आपका बहुतसा समय व्यतीत हो जाता है, जिससे मैं और आप इसपर विशेष ध्यान दे ही नहीं सकते।

सु०—इसका उपाय मैं कहता हूं, इसपर विशेष ध्यान रखना।

स०—कहिये। आज यह बच्चा पूरे ५ वर्षका हो गया है। कलसे इसका छठा वर्ष आरम्भ होगा। अब जो करना उचित है सो कहिये।

सु०—जितना समय मिले तुमको इस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये कि वह कैसे बच्चोंके साथ खेलता है। इसका सुगम उपाय यह है कि तुम इसके समवयस्क बालकोंके, जिनके साथ यह खेलता है या जिनके यहां यह आता जाता है, अपने घरमें लानेका प्रबन्ध करो, और उन बच्चोंपर विशेष ध्यान दो कि कहीं वे गाली-गलौज निकालनेवाले तो नहीं हैं। यदि हों तो पहिले उनको भली भांति समझा दो। यदि तुम्हारे समझानेसे वे न समझें तो फिर तुमको यह प्रबन्ध करना आवश्यक है कि वैसे बालक फिर तुम्हारे यहां न आने पावें और न उनके यहां यह बच्चा कभी जावे।

इसके सिवा एक बातपर और भी विशेष ध्यान देना उचित है । यह माता-पिताका कर्त्तव्य होना चाहिये कि बच्चोंको बाहर घूमने साथ ले जावें, और जब बच्चे बाहर जावें तो देखें कि बालक किस प्रकारके खेल खेलता है, और कौनसी वस्तुकी ओर उसका मन आकर्षित होता है ।

जो माता-पिता अपने बच्चोंको अपने साथ बाहर नहीं ले जाते वह बच्चे स्वयं बाहर जाना सीख जाते हैं और बड़े होकर भी पिताके साथ जानेसे झिझकते हैं । इससे बच्चे बहुत बिगड़ जाते हैं । आज कुछ तुमने इसको पढ़ाया है ?

स०—आज इसने क से प तक अक्षर पढ़ लिये हैं । आशा है कि दो चार दिनमें सब अक्षर सीख लेगा । बड़े आनन्दका विषय है कि इसका उच्चारण बड़ा स्पष्ट है; और इसने एक दिन भी मार तो कहां झिड़कतक भी नहीं खाई । बड़े प्रेमसे अपने आप पढ़ता है ।

सु०—यह तो बतलाओ, तुमको पुत्रके पढ़ानेमें कौनसी सुगम रीति भासती है ।

स०—वह जो ताश आप लाये थे जिसके एक ओर सुन्दर बेल-बूटे और दूसरी ओर बड़ी मोटी लिपिमें अक्षर लिखे हैं, उसीसे यह अक्षर सीख गया है । मेरी सम्मतिमें यही सुगम और सस्ता उपाय है । आप उसे कितनेमें लाये थे ?

सु०—छः आनेमें । परंतु देखो हमारे देशमें बच्चोंके पढ़ानेमें यह रीति वर्ती नहीं जाती । इस ताश-बक्सका निर्माणकर्ता

कहता था कि इसपर सर्वसाधारण ध्यान ही नहीं देते। मैंने उससे कहा था कि इसके प्रचारके लिये मैं यत्न करूंगा।

स०—स्वामीजी! इसे तो जिसने देखा है उसीने पसंद किया है। कल आप आते समय ऐसे और बक्स अवश्य लेते आवें, एक मेरी पड़ोसिन मंगा रही है और एक बुढ़िया मांग गई है।

सु०—मेरी इच्छा है कि बालक बहुत छोटी आयुमें पाठशालामें न भेजे जावें; क्योंकि वे वहां जितनी शिक्षा पायेंगे उससे अधिक कुशिक्षा प्राप्त करेंगे। हमारे देशमें ऐसा कोई स्कूल या पाठशाला नहीं है जैसे कि विलायतमें हैं, जिनमें एक मात्र छोटे छोटे ही बच्चे शिक्षा पाते हों। यहां तो छोटे बड़े बच्चोंके मिश्रित स्कूल हैं।

विलायतमें तो ऐसी अध्यापिकायें पाठशालाओंमें नियत की जाती हैं जिनके अपने कोई संतान नहीं होती। वह आश्रमके बालकोंको अपने बालक जान बड़े प्रेमसे पढ़ाती हैं और बच्चोंको खेलाती हैं।

स०—छोटे बड़े बच्चोंके मिलकर पढ़नेसे क्या कुछ हानि होती है?

सु०—निस्संदेह बड़ी हानि होती है। जब मैं स्कूलमें पढ़ता था एक दिन मुझे एन्ट्रेन्स क्लासकी दसवीं श्रेणीके विद्यार्थियोंसे मिलनेका अवसर मिला। छुट्टीका दिन था परन्तु मास्टरकी प्रेरणासे वे स्कूलमें एकत्रित थे। उस दिन उनके वार्तालापको सुन मुझे बड़ी घृणा उत्पन्न हुई और मैं धीरे २

उस स्थानसे निकलकर चल दिया और मेरे मनमें यह निश्चय किया कि इस स्कूलका त्याग करके गवर्नमेण्ट स्कूलमें पढ़ना अच्छा होगा, क्योंकि ऐसी संगतिमें माता-पिताकी सच्छिक्षाका प्रभाव भी तत्क्षण नष्ट हो जाना स्वत:सिद्ध है। इस विचारसे जब मैंने गवर्नमेण्ट स्कूलके विद्यार्थियोंकी दशा देखी तो उनका आचार-व्यवहार और वार्तालापादि उससे भी अधिक मंद दीख पड़ा। जो माता-पिता अपने बच्चोंको मनुष्य बनाना चाहें, उनको छोटी अवस्थाके बच्चोंको पाठशालाओंमें प्रविष्ट कराना कदापि उचित नहीं।

स०—आपके कथनसे जान पड़ता है कि प्रति वर्ष जो इतने बी० ए०, एम० ए०, एल० एल० बी० होते हैं, उनमेंसे बहुतसे मनुष्यत्व प्राप्त नहीं करते।

सु०—हां, यह नितान्त सत्य है। जो आजकल पठन-पाठनकी प्रणाली है उससे मनुष्यत्व-प्राप्ति दूर है। इतनी शिक्षाके स्थानमें यदि थोड़ी शिक्षा प्राप्त कर मनुष्यत्व-प्राप्ति हो तो वह अधिक लाभदायक है। वह सब पाठशालायें और महाविद्यालय मनुष्यके लिये धनोपार्जनकी शिक्षा देनेवाले हैं।

स०—आपका यह कथन ठीक नहीं जान पड़ता। क्या आपको इसका पूर्ण विश्वास है ? आपने किसीको देखा है ?

सु०—हां सुनो, एक दिन मैं दफ्तरसे आ रहा था तो अपने एक स्कूलके निकट एक नौ दस वर्षका बालक सहपाठीको "अरे ओछे देख देख" कहकर बुला रहा था। ऐसी बुरी

रीतिसे जिसे वह बुला रहा था वह एक सुप्रतिष्ठित, नगर-प्रसिद्ध व्यक्तिका तनय था। उस बालकके इस व्यवहारको देख मुझे बड़ा क्लेश हुआ। मैं चुप न रह सका। मैंने उस बालकको बुलाया, परन्तु उसने मेरे बुलानेकी तनिक परवाह न की। बहुत यत्न करनेपर वह जब मेरे निकट आ गया, तब मैंने उससे कहा— "भाई, मुझे यह तो बतलाओ कि तुमने उसको जो ऐसी बुरी रीतिसे बुलाया इसमें तुम्हें क्या लाभ हुआ और यदि तुम उसे मान-पूर्वक बुलाते तो तुम्हारी क्या हानि होती? मेरे ऐसा पूछनेपर उसने कहा कि क्या तुम उसके मामा लगते हो। यह सुन मुझे तो परम लज्जा आई परन्तु वह बालक हंसता हुआ चला गया। मेरी यह इच्छा हुई कि मैं उसके पिताका पता लूं और उससे इसका वर्णन करूं, परन्तु मुझे इतना अवकाश न था।

फिर एक बार मैं किसी आवश्यक कार्य्यके लिये जा रहा था और वहींपर खड़ा हो गाड़ीकी प्रतीक्षा कर रहा था। उस समय क्या देखता हूं कि हिन्दू स्कूलकी छतपर बहुतसे बालक चढ़े हुये हैं और बहुतसे चढ़नेके लिये दौड़ रहे हैं, जिन्हें देख मुझे कौतूहल हुआ कि मैं मालूम तो करूं कि वह इतनी शीघ्रता क्यों कर रहे हैं। मैंने एक दो बालकोंसे पूछा परन्तु उन्होंने मेरे पूछनेकी कुछ भी परवाह न कर उत्तरतक मुझे न दिया। परन्तु मुझे अन्य व्यक्तिसे पूछनेसे जान पड़ा कि ४ बजे यहांसे एक सवारी निकलेगी। यह जानकर मुझे अतीव विस्मय हुआ कि यह बालक व्यर्थ चार ४ घंटे क्लेश सहेंगे। मैंने फिर एक

बालकसे कुछ कहना चाहा परन्तु उसने इतना ही उत्तर दिया "मुझे देर होती है।" दूसरेसे पूछने लगा तो उसने भी "चुप रह, मुझे शीघ्रता है" इतना ही कहा। अन्तको मेरी बात किसीने न सुनी और मैं निराश हो वहांसे धीरे २ चल दिया।

सरला ! क्या ऐसी असभ्यताको तुम पसंद करती हो ? यह निश्चय समझो कि साधु-प्रकृति बालक भी दुष्ट-प्रकृति बालकोंसे मिल दुष्ट-प्रकृति हो जाते हैं। क्या तुम यह चाहती हो कि तुम्हारा पुत्र जो कि बुद्धिमान, विचारशील, साधु-स्वभाव और विनम्र है उनकी संगतिमें पड़कर उसी प्रकृतिका बालक बन जावे ?

स०—आपके कथनानुसार तो बालकको स्कूलमें भेजना नहीं चाहिये। अब प्रश्न यह है कि यदि बच्चेको स्कूल न भेजें तो उसके पढ़ानेका प्रबंध क्या और कैसे किया जावे।

सु०—क्या तुमको स्मरण नहीं कि जज द्वारकानाथ महाशयने अपने किसी बच्चेको पाठशालामें नहीं पढ़ाया। परन्तु उनके पुत्र कैसे सुयोग्य, विद्वान और माननीय हो गये हैं। और कलकत्तेमें ठाकुर संप्रदायके लोग अपने बच्चोंको स्कूलमें भेजते ही नहीं। वे अपने लड़कोंको घरमें ही शिक्षा दिलाकर उन्हें चतुर, विद्वान और कार्य्य-कुशल बनाते हैं। न्यूटन साहिब जिन्होंने कई वर्ष आकाशमें घूमकर कई एक नक्षत्रोंकी तलाश करके संपूर्ण विश्वमें यश प्राप्त किया है और जिनका नाम जबतक चांद सूर्य्य हैं इस पृथ्वीपर चमकता रहेगा, उन्होंने भी तो घरमें ही शिक्षा पा इतनी योग्यता प्राप्त की थी।

स०—यह जो आपने नाम लिये हैं यह सब तो बड़े बड़े धनी हैं हम सरीखे निर्धन पुरुष क्या करें ?

सु०—मैं इस विषयमें बहुत दिनोंसे विचार रहा हूं, परंतु कुछ समझमें नहीं आता। अभीतक तो यही निश्चय किया है, कि तुम स्वयं ही इसको शिक्षा दो। इसीलिये स्त्री-शिक्षाकी इस देशमें बड़ी आवश्यकता है; क्योंकि हम सरीखे लोग तभी अपनी संतानको शिक्षा दे सकते हैं। अभी यथाशक्य शिक्षा तुम दो और मैं भी यथासंभव सहायता करूंगा।

स०—मैं सौ काम छोड़कर भी बच्चेको पढ़ानेके लिये यत्न करूंगी। परन्तु मेरी विद्या कितने दिन काम दे सकती है ?

सु०—जहांतक तुम पढ़ा सकती हो पढ़ाओ, उसके अनंतर फिर देखा जायेगा।

स०—आज मैंने १ से ५० तककी गिनती बच्चेको सिखायी है और दो तीन दिनमें १०० तक सिखला लूंगी।

सु०—स्लेटपर अंक लिखकर अब इसको जमा खर्च सिखलाना।

स०—अंक स्लेटपर लिखकर सिखलाना कुछ कठिन है। आगामी रविवारको आप मुझे सहायता दीजियेगा। इस प्रकार शिक्षामें अतीव सुगमता हो जायेगी।

सु०—अच्छा, मैं सुकुमारको पैसे रखकर सिखा दूंगा अक्षर-बोध होनेपर स्लेटपर लिखाना अच्छा है।

स० - हां, मैं प्रति दिन एक एक करके सिखला लूंगी।

अ, आ, क, ख, बहुत दिनोंसे सीख चुका है, अब तो इसे मुहा-रनियां सिखलाऊंगी।

सु०—अच्छा, अब इसे कागजपर लिखना सिखाओ।

स०—बहुत अच्छा, कल आते हुये कागज लेते आइयेगा।

दूसरा परिच्छेद ।
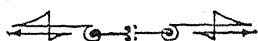
सरला नित्य प्रति बच्चेको पढ़ानेमें यत्न करती थी और उसके साथ ही साथ छोटी २ शिक्षाप्रद कहानियां भी उसे नित्य सुनाती थी जिनसे उसका ज्ञान, बुद्धि और विचार-शक्ति बहुत बढ़ती थी। ज्ञानोत्पादक जो कहानियां वह बच्चेको सुनाती थी, उनको पहिले पुस्तकोंसे पढ़ती रहती थी। उसकी पाठ्य पुस्तकें आजकल एक मात्र निम्न विषयकी होती थीं। १—राजाका या रंकका बालक हो उसको शिक्षा किस प्रकार दी जाती है। २—छोटी अवस्थामें किन उपायोंके करनेसे बच्चा पंडित और सर्वमान्य हो सकता है।

अमरीकाके प्रेसीडेंट मिस्टर गारफील्ड एक सामान्य व्यक्तिके पुत्र थे। इनके पिता महाशय अतीव दीन-दरिद्री थे। इन्होंने एक मात्र अपनी माताकी शिक्षा तथा निज परिश्रमसे ही इतनी योग्यता प्राप्त की थी। ऐसे २ सुविख्यात ओवरलैंडमें ही नहीं हुए वरंच भारतवर्षमें भी द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य आदि आदि राजाओंके गुरु अतीव निर्धन ब्राह्मणोंकी सन्तान थे। पञ्जाब प्रांतमें महाराजा रणजीतसिंह और हरिसिंह प्रभृति महानुभावोंने भी जिनके नामसे आजतक अफगानिस्तानके पठान कांप उठते हैं अपने ही बाहुबलसे भारतवर्षके पञ्जाब प्रांतमें राज्य स्थापित कर अक्षय यश लाभ किया है।

सार यह है कि अभीतक बालक बोधोदय ही पढ़ रहा था कि सरलाने आख्यानमञ्जरी और चरितावलीकी परम शिक्षाप्रद कहानियां अपने पुत्रको कण्ठ करा दी थीं ।

बच्चोंको सुगमतासे शिक्षा देनेका इससे सुगम और कोई उपाय नहीं । प्रत्येक माताको सरलाकी भांति अपने बालकोंको शिक्षाप्रद कहानियोंसे शिक्षा देनी चाहिये ।

एक दिन दफ्तरसे आकर सुबोधचन्द्रजी कुछ विश्राम कर रहे थे कि इतनेमें बालक खेलता २ उनके पास आ गया ।

सु०—बच्चे, बतलाओ तो आज तुमने क्या पढ़ा है और कौनसी नई कहानी अपनी मातासे सुनी है ।

बा०—आज बड़ी अच्छी कहानी माताजीने सुनाई है । मैं आपको सुनाता हूं, क्या आप सुनेंगे ?

सु०—हां सुनाओ ।

बा०—दो भाई एक पहाड़पर घूमने गये । घूमते २ वह मार्ग भूल गये । इतनेमें रात्रिकाल हो गया । रातके समय बड़े भाईने छोटे भाईको कांपता देख उसे ढांपकर सुला दिया और अपने कपड़े भी उतारकर उसे पहना दिये । उसे अच्छी तरहसे ढांपकर आप उसके ऊपर चिपट गया ।

सु०—इसके पीछे क्या हुआ ?

बा०—इसके अनन्तर उनका पिता ढूंढ़ता २ वहां आ पहुंचा और उसने देखा कि दोनों भाई जुड़कर लेटे पड़े हैं । जब बड़े पुत्रको उठाकर उसने देखा कि उसने अपने कपड़े उतारकर

छोटे भाईको पहना दिये हैं और उसकी शीतकी रक्षाके लिये आप भी उसको लिहाफका काम दे रहा है तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने यह समझा कि यदि बड़ा लड़का ऐसा न करता तो छोटे पुत्रके प्राण न बचते । तब उसने ईश्वरको धन्यवाद दिये और बड़े पुत्रको बड़ा प्यार किया और उन दोनोंको घर ले आया ।

सु०—पुत्र ! तुमने यह कहानी भलीभांति याद की है, बहुत अच्छा किया । इससे तुम्हारी स्मरण-शक्ति बढ़ेगी और बड़े होकर खूब उन्नति करोगे ।

बा०—मैं बहुत परिश्रमसे पढ़ता हूं, जो कुछ मैं एक बार पढ़ता हूं दूसरी बार फिर उसको पढ़नेको जी चाहता है । जिस कथा या पाठको मैं दो बार पढ़ता हूं वही मुझे याद हो जाता है । पिताजी ! छोटे भाईकी जो बड़े भाईने रक्षा की उसने बड़ा अच्छा काम किया था, यह ठीक है न ?

सुबोधचन्द्रने देखा कि यह कहानी बच्चेको अच्छी जान पड़ी है और यह बड़े भाईके इस कामको पसन्द करता है तो उसने कहा—"पुत्र ! जो कहानी बच्चोंको अच्छी लगती है उसको वह दो बार सुन या पढ़ लें तो वह उनको याद हो जाती है ।"

इतनेमें सरला भोजन तय्यार कर चुकी और अपने पुत्र और पतिको भोजन करनेको बुलाने आई । उसने अपने पुत्रको कहानी सुनाते देखा । यह देख वह बड़ी प्रसन्न हुई और स्वामीसे प्रार्थना की कि भोजन तय्यार है । सुबोधने कहा—"परसो, हम आते हैं ।"

जब वह जाकर भोजन करने लगे तो सरलाने प्रार्थना की कि मैं तो अपने सामर्थ्यानुसार आपकी आज्ञा पालन कर रही हूं, अर्थात् इस बच्चेको शिक्षा दे रही हूं, परन्तु आपने आजतक कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। बच्चेकी स्वतंत्रता भी बनी रहे और उसे पढ़ाया भी जावे यह बड़ा कठिन काम है। कल जब आप सैर करने जायें तो इसको भी साथ ले जायें। आपके साथ जाकर नई २ वस्तु देखनेसे इसका ज्ञान बढ़ेगा। अभी माता ऐसे कह ही रही थी कि बच्चा बीचमें ही बोल उठा—"पिताजी! कल मैं आपके साथ चलूंगा। आप मुझे साथ ले चलेंगे न, बतलाइये ले चलेंगे न!"

सु०—अच्छा, देखा जावेगा।

बा०—ना, ऐसे नहीं, आप कहिये, कल साथ ले चलियेगा न? मैं आपके साथ चलूंगा।

सु०—तुम हमारे बराबर चल नहीं सकोगे, मैं तुम्हारे संग चलूंगा तो मेरे काममें विघ्न होगा।

बा०—अच्छा पिताजी! मैं दौड़ता चलूंगा।

सु०—यदि जैसे आज झड़ है कल भी ऐसा ही हुआ, धूप न हुई तो ले चलूंगा। परन्तु तुम जल्दी उठकर हाथ मुंह धो कपड़े पहन लेना।

यह सुन बच्चा बड़े हर्षसे बोला—"अच्छा, यदि मैं शीघ्र न उठूंगा तो आप मुझे न ले जाइयेगा।" यह कहकर शीघ्र थोड़ासा भोजन करके सोने चला गया और थोड़े ही कालमें सो गया और घुर्राटें मारने लगा।

माता और पुत्र।

स०—अब आप कृपा करके अपने घरमें एक शिशु-शिक्षालय खोलनेका प्रबंध कर दें, जिसमें ११ बजेसे ४ बजेतक बच्चे पढ़ सकें और मैं इनको देख सकूं। आप पड़ोसियोंसे इस विषयमें सलाह करें।

सु०—कुछ दिन हुये मैंने यही सोचकर एक दो मित्रोंसे परामर्श किया था। अच्छा, अब मैं एक दो मित्रोंसे फिर सलाह करूंगा।

स०—लोग तो यह चाहते हैं कि हमारे बच्चे दूर पढ़ने न जायें। आपके कथनसे मुझे तो बालकोंको स्कूलमें पढ़ानेसे घृणा हो गई है।

सु०—तुम्हारे इस सात वर्षके बालकने जितनी शिक्षा पा ली है और जितने उत्तम भाव प्राप्त कर लिये हैं यदि इसको स्कूलमें भेजा जावे तो उन अच्छे भावोंपर पानी फिर जावेगा। तुम्हारे यत्नसे आजतक इसमें कोई बुरा स्वभाव नहीं पड़ा।

स०—सत्य है, अभीतक तो यह बच्चा जो पढ़ाओ मन लगाकर पढ़ता है, जो सुनाओ मन लगाकर सुनता है, कहा मानता है, झूठ बोलना तो जानता ही नहीं और सबसे प्रेम और नम्र भावसे बोलता है। ईश्वर करे, इसके यह सब गुण इसमें बने रहें।

सु०—भला इसके कोई काम तो सुनाओ।

स०—आज पांच छः दिनका वृत्तान्त है कि पड़ोसके रहनेवाले मदनके दोनों लड़के हमारे घर खेलने आये और खेलते २

लड़ पड़े। बड़ेने छोटेको मारा और वह रोने लगा। इसने उसको चुप करानेका यत्न किया परन्तु जब वह चुप न हुआ तो वह दौड़ा दौड़ा मेरे पास आया और कहने लगा—"मांजी! सुरेश रोता है।" उसके परामर्शसे मैंने जाकर उससे पूछा-"बेटा! क्यों रोते हो?" उसने कहा "भाईने मेरी लाठी छीन ली है, देता नहीं। मैं मांगता था इसने धक्का देकर मुझे गिरा दिया है।" जब मैंने उससे पूछा तो उसने कहा—"यह सोटा मेरा है, मैंने ले लिया, उसे नहीं देता।" मैं अतीव कठिनतामें पड़ गई। तब इस बच्चेसे पूछा कि तुम सत्य सत्य कह दो क्या बात है। इसने जो बात हुई सब ठीक २ कह दी, जिसे सुन समझकर मैंने उन बच्चोंमें शान्ति करा दी।

तीसरा परिच्छेद ।

—*—:*:—*—

दूसरे दिन जब सुबोधचन्द्र उठे तो क्या देखते हैं कि बालक उनसे भी पहिले उठा है। बालक पिताजीको उठे देख कहने लगा—"मैं आपसे पहिले उठा हूं। मुझे बाहर ले चलें।" उन्होंने कहा—"बहुत अच्छा, मुंह हाथ धोकर कपड़े पहन लो।" बालक बड़े हर्षसे मुंह धोने लगा। सरलाजीने उसे यथोचित वस्त्र पहिना दिये।

सुबोधचन्द्र प्रातः वायुसेवनको जाते समय उसे साथ ले गये। बालक बड़े आनन्दसे शीघ्र २ चलता हुआ उनके साथ एक बागमें जा पहुंचा, परन्तु थक जानेके कारण एक स्थानपर लेट गया। सुबोधचन्द्रने उसे देखकर समझ लिया कि बालक थक गया है। कुछ विश्राम कर लेनेके अनन्तर उन्होंने उससे कहा—"बच्चे! देखो इस बागमें कितने सुन्दर फूल हैं।" बालक झट खड़ा हो देखने लगा। कई फूल जो उसने पहिले कभी नहीं देखे थे, उनके नाम पूछने लगा और उसके मनमें इस बातकी बड़ी इच्छा थी कि एक गुलाबका फूल तोड़ लूं। परन्तु पिताजीकी आज्ञाके बिना वह तोड़ता नहीं। अन्तमें पिताजीसे पूछा—"यह फूल मैं ले लूं?"

सु०—बेटा! बागका माली यहां नहीं है। उससे बिना पूछे फूल लेना उचित नहीं। देखना कोई फूल मत तोड़ना!

बा०—पिताजी! इसीलिये तो तोड़ा नहीं। यह काहेका फूल है?

सु०—"यह कमलिनी है।" बालक इसी प्रकार अनेक फूलोंका नाम पितासे पूछता रहा और नाम स्मरण करता रहा। फिर कहने लगा—"पिताजी! देखिये, वह गुलाबका कितना बड़ा फूल खिला है। भला हमारे घरपर इतने बड़े २ फूल क्यों नहीं लगते?"

सु०—इतने बड़े २ फूल घरमें नहीं होते।

पुत्र—क्यों नहीं होते?

पिता—यह बीज एक भिन्न प्रकारका है। इनका रङ्ग भी सुन्दर है और ये हैं भी बड़े। ऐसे फूलोंको खुली वायु और विस्तृत स्थान चाहिये।

इसी प्रकारकी बातचीत करते २ वह पिता-पुत्र बागके एक सरोवरपर आ पहुंचे। वहांपर बालक क्या देखता है कि बहुतसी मछलियां तालाबके किनारेपर खेल रही हैं और अपना खाद्य ढूंढ़ रही हैं। यह देख बच्चा बड़ा प्रसन्न हुआ और एक मछली पकड़नेकी उसकी उत्कट इच्छा हुई। यह देख पिताने कहा—"क्या तुम एक मछली पकड़ना चाहते हो?" पुत्र—"हां पिताजी, मैं चाहता हूं।" पिता—"अच्छा पकड़ लो।" पिताकी आज्ञा पाते ही बालक पकड़नेका प्रबल प्रयत्न करने लगा। परन्तु जब पकड़ने लगता है तब मछली आगे निकल जाती है। जब यह उधर दौड़कर जाता है और मछली पकड़ने लगता है तो वह दूसरी ओर निकल जाती है। यहांतक कि इस बच्चेने बहुतेरा

यत्न किया परन्तु इसके हाथमें एक भी मछली न आई। अन्तमें पितासे कहने लगा—"पिताजी! आज मैं थक गया हूं, कल आकर पकड़ूंगा।"

पिता-पुत्र वहांसे चलकर जब घर पहुंचे तो बालक दौड़ा २ माताके पास गया और उससे कहने लगा—"माताजी! आज मैंने बड़े २ और अतीव सुन्दर गुलाबके फूल बागमें देखे हैं, और वहां एक सरोवरके किनारे बहुतसी मछलियां भी देखी थीं। मैं उनमेंसे एकको लाना चाहता था, परन्तु वह मेरे प्रयत्न करनेपर भी पकड़ी न गई। वह इधर-उधर भाग जाती थी।"

माता पुत्रके इन वचनोंको सुन बड़ी प्रसन्न हुई और पुत्रके चन्द्रमुखको चूमने लगी। पुत्रसे उसने कहा कि "बेटा! यदि तुम नित्य पिताके साथ प्रातःकाल जाओ तो तुम्हारा शरीर खूब हृष्ट पुष्ट हो जावे और तुम नाना प्रकारके फल-फूल और पशु-पक्षी आदि देखोगे।"

बा०—बहुत अच्छा, मैं नित्य जाया करूंगा। माताजी! क्या घरमें खेलना बुरा है?

स०—बेटा! घरमें खेलनेके बदले बाहर जाकर खेलना बहुत अच्छा है। बाहरकी प्रातःकालकी शुद्ध वायुके सेवनसे शरीर आरोग्य रहता है, रुधिर साफ होता है, भूख अच्छी लगती है और पढ़नेको मन बहुत चाहता है।

बा०—क्या घरकी पवन शुद्ध नहीं होती?

स०—क्या दुर्गन्धसे तुझे क्लेश नहीं होता?

बा०-होता क्यों नहीं,मैं तो दुर्गन्धयुक्त स्थानसे भाग जाता हूं।

स०—बेटा ! बात यह है कि घरोंकी घिरी हुई वायु शुद्ध नहीं रहती ।

यह कथन बच्चेके लिये एक नई संथा थी, इसलिये उसको भली भांति समझमें न आया और वह सोचने लगा ।

बा०—माताजी ! घिरी हुई वायु खराब क्यों होती है ?

स०—मनुष्य जो सांस लेते हैं वह शुद्ध वायु मनुष्यके भीतर जाकर मनुष्यके रुधिरसे कुछ मल लेकर बाहर आती है। वह वायु बड़ी खराब और रोगोत्पादक होती है। इसलिये जहांपर अधिक लोग रहते हैं वहांकी वायु उन मनुष्योंके सांसकी वायु बाहर आनेसे खराब हो जाती है। इसलिये घरोंकी वायुसे बाहरकी वायु स्वच्छ और उत्तम होती है। इसलिये लोग घर बड़े २ बनाना चाहते हैं और घरोंमें झरोखे और बारियें रखते हैं।

बा०—तो छोटे घरोंमें रहना अच्छा नहीं ?

स०—छोटे घरोंमें तो यदि बहुतसे आदमी रहें तो वहां घुटकर ही मर जायं। जब नवाब सिराजुद्दौलासे पहिले पहिल अंग्रेजोंसे युद्ध हुआ था तो नवाब साहिबने १४६ अंग्रेजोंको कैद करके एक छोटेसे कमरेमें रातको बन्द कर दिया था। थोड़े कालमें वह प्याससे दुःखित हो जल जल कह पुकारने लगे। जब उनको जल न मिला और उस छोटेसे कमरेमें सांस घुटने लगा तो एक एक करके १२३ मनुष्य एक रात्रिमें मर गये

और प्रातःकाल जब द्वार खुला तो केवल २३ मनुष्य जीवित निकले। जिस घरमें वह १२३ अंग्रेज मर गये थे अंग्रेजोंने उसका अन्धकूप नाम रखा है। कल मैं तुमको दिखला लाऊंगी।

घरकी वायुसे बाहरकी वायुमें बड़ा भेद होता है। क्या कल तुमको जान नहीं पड़ा ?

बा०—माताजी! १२३ मनुष्य जल २ पुकारते मर गये! क्या उनको किसीने जल न दिया? यह बड़ी बुरी बात है, यह तो बड़ी निर्दयता है।

स०—जब राजाओंसे राजाओंका युद्ध होता है तो कई ऐसे अन्यायके काम होते हैं।

बा०—माताजी! यह कबकी घटना है ?

स०—इस घटनाको कोई डेढ़ सौ वर्षसे अधिक समय हो गया है।

बा०—माताजी! मुझे भूख लगी है, कुछ खानेको दीजिये।

स०—तुम्हारे लिये मैंने मोहनभोग बनाकर वहां थाली ढांपकर रक्खा है, वह लेकर खा लो।

बालक मोहनभोग खाकर पढ़नेमें लग गया और सरला भोजन तय्यार करने लग गई। परन्तु बीच २ में बालकको पाठ भी बतलाती जाती थी।

इतनेमें सुबोधचंद्रजी घरमें आ गये। उन्होंने बच्चेको एकान्त बैठे पढ़ते देखा, तो बड़े प्रसन्न हुये। थोड़ी देर ठहरकर जब उसके पास गये तो पुत्रने पितासे कहा कि "पिताजी! देखिये,

मैंने कितना पढ़ लिया है।" यह देख सुबोधचन्द्रने उसके मुखको चूमा और कहा—"अच्छा पुत्र! अब खेलो।" पिताकी आज्ञा पाकर पुत्र बड़ी प्रसन्नतासे नाचता २ घरके बाहरके द्वारपर आकर कूदने लगा।

इतनेमें रेलका शब्द उसके कानमें पड़ा जिसे सुन वह और थोड़ा आगे बढ़ नाचता २ मधुर स्वरमें गाने लगा—

कलसे क्या नहीं बनता, कल सड़कें बनाती है।
कल मनुष्यको ले जाती है, कल ही बात-चीत करती है।

कुछ समयके अनन्तर सुबोधचन्द्र बच्चेको देखनेके लिये बाहर आये तो उसको नाचते और उपरोक्त गीत गाते सुना। उन्होंने पुत्रसे पूछा—"यह क्या कर रहे हो? यह तुमको किसने सिखाया है?" बच्चेने उत्तर दिया—"मैंने माताजीसे सीखा है।"

सु०—"भला जो गीत गा रहे हो इसको तुम समझते भी हो?"

पुत्र—"हां, मुझे माताजीने बतलाया था। कलसे सड़कपर पत्थर-कंकर कूटे जाते हैं। इससे कलसे ही सड़कें बनती हैं। उस दिन आप मुझे रेलपर चढ़ाकर ले गये थे, तब इञ्जिनने फफ फफ करके गाड़ियोंको खींच लिया था और उसके साथ २ ही हमारी गाड़ी भी गड़ गड़ करके उसके पीछे दौड़ती जा रही थी; तो क्या कल हीने मनुष्योंको उठा लिया या नहीं?"

पिता—"भला यह तो बतलाओ कल बात-चीत कैसे करती है।"

पुत्र—"यह जो सड़कोंके ऊपर तार जाता है, इसे टेलीग्राम कहते हैं। यह तार कई शहरों तक चला गया है। एक शहरसे एक बाबू इसको खट खट करता है दूसरे शहरका बाबू उसे सुन-कर कागजपर लिखता जाता है, और जिसके नामका तार रहता है, वह उसको भेज देता है, तो तार बात-चीत नहीं करता तो और कौन करता है?

पिता—तुमने जो कुछ कहा है सब ठीक है। आज मैं तुमको और भी बतलाऊंगा। कल फिर एक और प्रकारकी कथा सुनाऊंगा।

पु०—पिताजी! आज ही बतलाइये।

पि०—पुत्र! आज देर हो गई है, कल बतलायेंगे।

पु०—न, न पिताजी! आज ही बतला दीजिये।

पि०—आज समय थोड़ा है, मुझे दफ्तर जाना है, जल्दीमें ठीक नहीं बनेगा, कल बतलायेंगे। तुम दो मोटे कागज और थोड़ीसी लेई और आग भी ला रखना।

पु०—पिताजी! अभी मैं ले आता हूं।

जल्दी २ जाकर कागज और लेई ले आया और धागा भी ले आया। पिताने झट मोटे कागजके दो डब्बे बना लिये और दोनोंमें धागा पिरो दिया, और एक डब्बा बच्चेको देकर कहा—"जितनी दूर यह धागा जाये उतनी दूर जाकर इस डब्बेको तुम कानसे लगाकर सुनना, मैं क्या कहता हूं।" पुत्र पिताके आज्ञा-नुसार जब वैसे ही खड़ा हो गया तो पिताने उस डब्बेमें मुख

लगाकर कहा—"बेटा! यह कैसी कल बन गई है?" पुत्र यह शब्द सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और पिताके समान डब्बेपर मुख रखके कहने लगा—"पिताजी! यह तो बहुत उत्तम कल है,मैं इसे संभालकर रक्खूंगा।" सुबोधचंद्रने कहा "यह पक्की नहीं बनी, कल मैं तुमको इससे अच्छी और मजबूत बना दूंगा।" पुत्रने कहा—"अच्छा मैं इसे भी भली भांति सम्भालकर रक्खूंगा।"

सु०—यदि तुम अच्छी तरह पढ़ोगे, तो तुमको मालूम हो जायगा, कि कैसी उत्तम २ विचित्र कलायें हैं। ईश्वरने मनुष्यको जो बुद्धि दी है उससे मनुष्य अपने लिये अनेक प्रकारकी सुगमता प्राप्त कर सकता है।

पु०—पिताजी! मैं खूब मन लगाकर लिखना-पढ़ना सीखूंगा, जैसा आप मुझे कहेंगे वैसा ही करूंगा। पिताजी! इसका नाम क्या है?

सु०—इसका नाम टेलीफोन है।

पुत्र इसका नाम खूब रटता रहा और घरमें जाकर मातासे कहने लगा—"मांजी! मांजी! पिताजीने मुझे एक कल बना दी है। तुम इसको कानसे लगा लो। मैं दूर जाकर जो कुछ बोलूंगा, वह सब तुमको यह सुना देगी।" पुत्र डब्बा माताके कानमें लग-वाकर घरमें दूर स्थानपर जाकर बड़ी प्रसन्नतासे कहने लगा—"माताजी! इस कलका क्या नाम है?" माता—"बेटा! इसका नाम टेलीफोन है।" पुत्र चकित हो पूछने लगा—"आपको यह नाम किसने बतलाया है?" माता—"मैंने समाचार-पत्रमें पढ़ा

था । यदि तुम भी मन लगाकर पढ़ना सीखोगे तो तुमको भी बहुतसी कलोंके नाम और उनके काम मालूम हो जायेंगे ।"

पु०—क्या तुमने यह पहिले करके देखा था ?

स०—नहीं, पहिले तो मैंने पढ़ा ही था, परन्तु पढ़नेसे वह आनन्द प्राप्त नहीं होता जो कल बनाकर उससे काम लेनेसे होता है ।

चौथा परिच्छेद

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर सरलाने अपने पुत्रको मकानके ऊपरकी छतपर कुछ काल तक इधर उधर घुमाया, फिर उसे अपने साथ ही नीचे ले आई और नीचेके दरवाजे खोल बालकको पूछने लगी, "बेटा! ऊपरकी वायु और इस वायुमें कुछ भेद है या नहीं?" पुत्र—"माताजी! ऊपरकी वायु तो बड़ी शीतल और सुगन्धित थी, यहां तो गरमी है।"

स०—इसलिये कल मैंने तुमको कहा था कि घरकी वायु स्वच्छ नहीं होती, घरके कवाड़ बन्द रहनेसे वह गरम और दुर्गन्धयुक्त हो जाती है। घरके कवाड़ खोलनेसे बाहरकी वायु भीतर आती है और भीतरकी वायु बाहर निकल जाती है, जिससे वह घर साफ हो जाते हैं।

बालक—तो माताजी! निर्धन लोग जो छोटे २ घरोंमें निवास करते हैं तब उनकी क्या दशा होती है?

स०—पुत्र! निर्धन ग्रामीण लोग बड़ी खुली वायुमें रहते हैं, और निर्धन लोग जो शहरोंमें रहते हैं उनकी प्रकृति वैसी ही हो जाती है, अर्थात् वह ऐसे तंग घरोंमें रहनेके अभ्यासी हो जाते हैं। उनको इसकी तीव्र दुर्गन्ध अनुभव नहीं होती, परन्तु फिर भी उनका शरीर दीर्घ काल तक स्वस्थ नहीं रहता, उनको रक्त-विकार हो जाता है, थोड़ेसे रोगसे अधिक कष्ट पाते हैं, सामान्य

पीड़ासे इन लोगोंका देहान्त हो जाता है। वह उदर भरकर खाना खाते हैं। स्वच्छ कपड़े पहनना और शुद्ध वायु सेवन करना प्रत्येक मनुष्यको उचित है।

सु०—बेटा! तुमने वह तारकी कथा अच्छी तरहसे सुन और समझ ली है?

बा०—हां, मैंने भली भांति समझ ली है, वरंच कल माता-जीने मुझे अन्ध-कूपकी कथा सुनाई थी, जिसमें एक रातमें १२३ मनुष्योंका तंग मकानके कारण सांस रुक गया था, और वह जल मांगते २ मर गये थे और केवल २३ मनुष्य बचे थे।

सु०—सरला! यह बहुत अच्छी कहानी तुमने सुनाई है। देखा, कहानियोंसे बच्चोंको कितनी जल्दी बोध होता है।

स०—आपने जो कल कहा था कि बच्चेको स्कूलमें न भेज कर, इसे घरहीमें शिक्षा दी जावेगी, तो उस विषयमें आपने क्या सोचा है? मेरे विचारमें तो घरमें पढ़ानेसे लाभ भी है, परन्तु हानियां भी बहुत हैं।

सु०—घरमें पढ़ानेसे तुम क्या क्या हानि समझती हो, बतलाओ। मैं उनको दूर करनेका प्रयत्न करूंगा।

स०—स्कूलमें पढ़नेसे बालकको नियमबद्ध होना पड़ता है, घरमें नियमबद्ध नहीं हो सकता। स्कूलमें स्वाधीनताका भाव नहीं रहता। यह दोनों कठिनाइयां मेरी समझमें नहीं आतीं।

सु०—स्कूलमें बालक नियम-बद्ध हो जाता है, क्या घरमें यदि तुम इसे नियम-बद्ध करना चाहो तो नहीं कर सकती?

तुम यह समझ लो कि जबतक बच्चा घरमें पढ़ता है तबतक घर ही उसके लिये स्कूल है, और उस कालमें स्कूलके नियम पूर्णरूपसे तुम बरत सकती हो, फिर घर समझकर घरका सा वर्त्ताव करो ।

स०—यदि ऐसा करना चाहते हैं, तो छोटे छोटे बालकोंको एकत्र करनेका प्रबंध कर एक अध्यापक नियत कर दें । इससे यह सब ठीक हो जावेगा ।

सायंकालको सुबोधचन्द्रजीने बुलाकर कहा,—"देखो, यह जो पुस्तक मैं पढ़ रहा हूं, इसमें इसी बातका वर्णन है । माता-पिताने अपने परिश्रमसे संतानको किस प्रकार घरकी शिक्षाहीसे सुयोग्य बना दिया है ।"

इतनेमें बालक भी जाग उठा और पिताके इस कथनको सुन झट बोल उठा – इस विषयको मुझे भी सुनाओ । तब सुबोध-चन्द्रने इस प्रकार कहना आरंभ किया ।

एक समय इंग्लैंडके कुछ लोग अमरीकामें जा बसे । वहां-पर पहिले उनको एक मात्र जंगलमें रहना पड़ा, जहांपर वनके फल और खेतीके लिये भूमि तो बहुत थी परन्तु और किसी प्रकारका सुभीता नहीं था । अन्तमें, घरके वृद्धने खेतीका काम समाप्त कर अपने २ बालकोंको पढ़ाना आरंभ किया और एक स्त्रीने छोटी २ कन्याओंके पढ़ानेका बोझ अपने ऊपर लिया । इसने एक शाला दो दो वर्षकी कन्याओंकी और एक शाला चार चार वर्षकी कन्याओंकी खोल दी, और कुछ कालमें उसने इन

कन्याओंको इस योग्य कर दिया कि ये घरके वर्तन साफ करने तथा घरके अन्य छोटे २ सब काम करने लग गईं।

यह सुनकर सुबोधचंद्रकी कन्या बोल उठी कि "माजी! कलसे वर्तन साफ मैं किया करूंगी। झाड़ू भी मैं ही दूंगी। मैं खेलने न जाऊंगी। और जो काम न कहोगी करूंगी।"

सु०—कन्याओंको छोटी उमरमें घरके काम करानेसे बड़ा लाभ होता है, बालक बालिका गृह-कार्य्यमें निपुण हो जाते हैं। माता-पिता जहां तक उनको पढ़ा सकें पढ़ा भी दिया करें। माता-पितासे बच्चे अनायास सब शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

स०—बननिवासी माता-पिता किस प्रकार बिना सामानके बच्चोंको शिक्षा दे सकते हैं?

सु०—बन-निवासी बनके विशेष फल और बेल-बूटियों तथा पशु-पक्षियोंको उपलब्ध कर, उनके आचार-व्यवहार और गुणादि समझा बड़ी शिक्षा दे सकते हैं। यह सामान तो राजा-महाराजाओंको भी उपलब्ध नहीं हो सकते।

स०—बनके पुष्प-पत्रादिसे किस प्रकार शिक्षा दी जा सकती है?

सु०—बनके रंग रंगके पत्ते ला माता-पिता बच्चोंको रंग सिखा सकते हैं। अनाजकी खेतियोंकी उपजका हिसाब-किताब रखना पड़ता है वह भी बच्चोंको समझा सकते हैं। और पशु-पक्षियोंका आहार-व्यवहार समझा सकते हैं। इस प्रकारकी शिक्षासे बच्चे मूर्ख नहीं रह सकते।

बा०—पिताजी! आप मुझे क्या २ पढ़ायेंगे?

सु०—पुत्र ! पहिले तुमको हिन्दी भाषामें सुबोध कर अंग्रेजी शिक्षा तुमको देनेका प्रबंध कर दूंगा ।

बा०—पिताजी ! अंग्रेजी अक्षर तो मैं सब पहचानता हूं, मैंने तो अंग्रेजी पढ़ना भी आरंभ किया हुआ है, क्या आपको मालूम नहीं ?

सु०—नहीं, मुझे तो यही ज्ञान था कि तुम हिन्दी ही पढ़ते हो ।

बा०—माताजीने मुझको एक सुन्दर संदूकची दिखलाई थी। एक दिन मैं वह बक्स लेकर खेल रहा था। माताजीने मुझे कहा इसको अन्दर रख दो, इसमें अंग्रेजी सीखनेके अक्षर हैं। मैंने कहा माताजी ! वह किस प्रकारके हैं, मुझे भी दिखलाओ। माताजीने संदूकची खोलकर मुझे दिखलाई और A, B, C, D, समझा दी और मैंने सब अक्षर पहचान लिये ।

सुबोध सरलाकी ओर देखकर कहने लगे कि तुमने तो चुपके २ बच्चेको अंग्रेजी अक्षर समझा दिये हैं।

सरला हंसकर कहने लगी कि बच्चेकी उत्कट इच्छा देख, सिखानेका अच्छा समय देख, मैंने थोड़े दिनोंमें इसे अंग्रेजीके अक्षर समझा दिये हैं।

सुबोधचन्द्रजीने पुत्रको वह बक्स लानेके लिये कहा। वह झट ले आया। सुबोधचन्द्रजीने एक एक अक्षर निकालकर उससे पूछना आरंभ किया। बच्चेने एक दो अक्षरोंके सिवा सब बता दिये। यह देख पिताने प्रसन्न हो, प्रेमसे बालकका मुख-चुम्बन किया

और "कहा बेटा ! अब बहुत रात्रि चली गई है जाओ अब सो रहो । बहुत जागनेसे बच्चे बीमार हो जाते हैं । तुम्हारी आयु अभी पांच वर्षकी है परन्तु तुम तो ८ वर्षके बालकोंसी शिक्षा पा चुके हो ।

स०—स्कूलके विषयमें जो आपका विचार था उस विषयमें आपने कुछ प्रयत्न किया है या नहीं ?

सु०—कल दफतरसे आते हुये मैं कई एक जगह गया था परन्तु बहुतोंसे मुलाकात नहीं हुई, कल फिर मैं प्रयत्न करूंगा । दो तीन मित्रोंसे मिला था वह ५) रु० मासिक देना स्वीकार करते हैं १०) रु० देना नहीं चाहते । कल फिर जानेसे निश्चय हो जावेगा ।

स०—यदि २०) मासिक एकत्र हो जाये तो क्या यह काम चल सकता है ?

सु०—हां, कठिनतासे हो सकता है, १५) मासिकको अध्यापिका और ५) मासिक अन्य व्ययके लिये । परन्तु इस प्रकार तुमको भी अध्यापिकाको सहायता करनी पड़ेगी । देख-भालका भार तो तुमको लेना पड़ेगा । तुमने इतने दिनोंसे जो बड़े परिश्रमसे शिशु-शिक्षा विषयको सीखा है वह सब तुमको सार्थक करना होगा ।

स०—जो कुछ आजतक मैंने इस विषयमें पढ़ा और सुना है वह तो सब मैं जानती हूं, परन्तु बच्चोंको किस रीति व क्रमसे सिखाना व पढ़ाना चाहिये इसका यथोचित ज्ञान मुझे नहीं है ।

यदि इस विषयमें आप मुझे सहायता न करेंगे तो मैं कुछ भी नहीं कर सकूंगी।

सु०—"आज नहीं, कल सायंकालको इस विषयमें बातचीत की जावेगी।" सरलाने कहा, "बहुत अच्छा।"

दूसरे दिन सायंकालको सुबोधचन्द्रजीने सरलाको बुलाकर इस विषयपर कहना आरंभ किया "आजका विषय जो कथनीय है, वह परमोपयोगी है। इसको मन लगाकर सुनोगी और समझोगी तो तुम्हारी समझमें आवेगा; क्योंकि यह अतीव कठिन है।"

सुबोधचन्द्र आज मनका देहके साथ जो संबंध है अर्थात् मनका देहपर और देहका मनपर जो प्रभाव पड़ता है, यह समझाना चाहते हैं। मनका प्रभाव कब किस प्रकार आरंभ होता है, किस प्रकार कार्य्य सम्पन्न होता है, और किस प्रकार कार्य्यसमाप्ति होती है, यह निश्चय करना सहज काम नहीं।

स०—शरीर किस प्रकार मनका परिपोषण करता है, हमारे मनपर शरीर किस प्रकार अपनी शक्ति प्रकाश करता है यह मुझे भलीभांति समझा दीजिये। इतने दिन शिशु-शिक्षा-संबंधी बातचीत होती रही परन्तु आजतक आपने इस विषयको छूआतक नहीं।

सु०—इस विषयके कथनकी आवश्यकता न थी, इसलिये मैंने स्पष्ट रूपसे नहीं कहा, परन्तु परोक्ष भावमें तो इस विषयपर मैं बहुत कुछ कह चुका हूं।

स०—अब आप समझाकर कहें, मुझे सुननेकी बड़ी इच्छा है।

सु०—अंधेरी रात्रिमें असंख्य तारे उदय होकर आकाशके सौंदर्य्यको बढ़ाते हैं। यदि उनको आखें न देखें तो मन उनके सौन्दर्य्य और विचित्रताको अनुभव कर सकता है? पुष्प-वाटिकाओंके अनेक पुष्पोंको यदि आंखे न देखें तो क्या मन उनकी शोभाके आनंदको प्राप्त कर सकता है? मधुर तान, स्वर और गीतसे मनके आनन्दानुभव करनेके लिये एक मात्र मनुष्यके कान ही सहायक हैं।

इसी प्रकार [मनुष्यकी पांचों ही इन्द्रियां मनाह्लादका कारण हैं। मनको पुष्ट करनेके लिये शरीर जो सहायता करता है वह इन उपरोक्त वाक्योंसे स्पष्ट रूपसे समझमें आ जाता है।

पांचवां परिच्छेद ।

स०—यह तो मैं समझ गई, और भी इस विषयमें कुछ कहना है ?

सु०—बहुत कुछ कहना है, सुनो। इसका क्रम यह है। सब विषय धारण करनेकी शक्तिका नाम मस्तिष्क है। वह मस्तिष्क एक शारीरिक वस्तु है, कई प्रकारके शारीरिक विभागके कोमल अंशोंका कोमल पदार्थ है। यह दृढ़ आवरणोंसे ढपा हुआ है और मस्तिष्कके मध्य भागमें होता है। इसीमें उत्तम शक्ति उत्पन्न होनेका ही यह प्रभाव है कि मनुष्य अपने सुभीतेके लिये अनेक कार्य्य संपादन कर सकता है। समुद्रके जहाज, आकाशके हवाई जहाज और कल द्वारा रेलका गमन आदि सब मस्तिष्क शक्ति द्वारा ही मनुष्यने तय्यार किये हैं। यहांतक कि इस संसारमें मनुष्य जितनी उन्नति कर सकता है वह सब मस्तिष्कसे ही कर सकता है।

स०—तो क्या, ज्ञान, बुद्धि, प्रतिभा, आदि मस्तिष्कसे उत्पन्न होनेवाले शारीरिक व्यापार हैं ? फिर तो दया,प्रेम, पवित्रता आदि सब मस्तिष्कके काम हैं ? हृदय और मन कुछ पदार्थ नहीं यह कल्पनामात्र हैं ?

सु०—बहुत दिन हुये यह प्रश्न तुमने, पहिले भी एक बार

किया था । मैंने इसके उत्तरमें तुम्हें कहा था कि शरीर, मन, हृदय और आत्मा इनकी उन्नति एक दूसरेपर क्रमशः निर्भर है ।

स०—महाराज ! इस प्रकार कहें जिस प्रकार मेरी समझमें यह बात भलीभांति आ जावे ।

सु०—शारीरिक उन्नति ज्ञानपर निर्भर है, इतना तो तुमने समझ लिया है ?

स०—यह तो ठीक है, शरीरकी स्वस्थता रखनी आवश्यक है परन्तु यह समझमें नहीं आता कि शरीरके साथ ज्ञानका क्या संबंध है ?

सु०—ज्ञान शारीरिक व्यापार नहीं,वरंच मानसिक व्यापार है। यह शरीर तो मानो एक घर है,पर यह मन भी ज्ञान नहीं है,इसमें ज्ञान-लक्षण तनिक भी नहीं घटता । तुम तनिक विचारसे जान लोगी कि मन एक जड़ वस्तु-जात पदार्थ है, यह सर्वत्र प्रतीत होता है ।

स०—यह केवल जड़ वस्तु-जात नहीं हो सकता, यह तो अन्य वस्तु-जात होना चाहिये, आप मुझे समझायें ।

सु०—शरीर और आत्मा इन दोनोंके मिलापसे मनके काम देखनेमें आते हैं । मन शरीरका एक अंश है; क्योंकि मनमें जो भाव उत्पन्न होता है, वह शरीरसे अपने आप प्रकाशित होने लगता है । मनके उत्तेजित होनेसे शरीर भी उत्तेजित हो जाता है । मनमें शोक होनेसे आंखोंमें आंसू भर आते हैं । मनके गंभीर विषय चिन्तन-कालमें शरीरका भी एक विचित्र आकार हो जाता है । किसी शुभ संवादको श्रवण कर मन हर्षित होता है तो मनुष्य

हंसने लग जाता है। इन घटनाओंसे मन और शरीरमें एक अद्भुत संबंध जान पड़ता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि मनका बाहिरी भाग शरीर है और शरीरका अभ्यन्तरी भाग मन है। यदि किसी पुरुषके मनमें यह संकल्प उत्पन्न हो कि वह धन कमा अपनी निर्धनताका क्लेश दूर कर दे और वह इसीको सदनुष्ठान समझता है, तो उसी अनुष्ठान करनेवालेके मनमें भक्ति और लोक-सेवाका भाव उज्ज्वल रूपसे उत्पन्न हो जाता है। बाहरकी कोई घटना न होनेपर भी मानसिक संकल्प इस प्रकारके उत्पन्न हो जाते हैं। यही मनकी आभ्यन्तरिक दशा है। जबतक शरीरमें आत्मा विराजमान रहता है तबतक ही ऐसे २ विचार उत्पन्न होते हैं। जब आत्मा शरीरका त्याग कर देता है तब कोई भी संकल्प उत्पन्न नहीं होता। वैसे ही यह प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि जबतक यह शरीर न हो तबतक भी मन कुछ भी कल्पना नहीं कर सकता। परन्तु मानसिक संकल्प शरीर-जात नहीं, शरीर तो एक मात्र मनोजात कार्य्य-संपादनका सहायक है।

स०—अब मैं समझ गई, कि जितनी वासना मनुष्यमें उत्पन्न होती हैं वह मनसे उपजती हैं, शरीरसे नहीं। शोक शरीरको नहीं होता मनको होता है। परन्तु शोकसे शरीरका ध्वंस हो जाता है। मनुष्य पागल हो जाता है, पागल होनेसे शरीरका कोई अङ्ग भङ्ग नहीं होता। मन शरीरसे भिन्न है, यह तो ठीक समझमें आ गया है। आहार-विहार आदि सब कार्य्य

चलते रहते हैं। जो मनुष्य पागल हो जाता है उसके मनकी समस्त घटनायें विपर्य्यय हो जाती हैं, मनके सब सद्भाव नष्ट हो जाते हैं। इससे यह भी मालूम हो गया है कि शरीरके द्वारा मन पुष्टि पाता है। मनके स्वस्थ होनेपर शरीर कार्य्य कर सकता है अर्थात् मनका प्रभाव शरीरपर और शरीरका प्रभाव मनपर पड़ता है।

सु०—एक बार मैंने सुना था कि एक मनुष्यको बहुत दिनोंसे नित्य ज्वर हो जाता था। एक डाक्टरने औषधि करनी आरम्भ की। जब बहुतसी औषधियां सेवन करानेसे भी उसका ज्वर बराबर नियत समय आता ही रहा, तो उस बुद्धिमान् डाक्टरने उसकी घड़ी चुपकेसे दो घण्टे पीछे कर दी। उसको ठीक १२ बजे ज्वर होता था। उस दिन भी जब उसकी घड़ीमें १२ बजे तो उसको ज्वर हो गया। वास्तवमें उस समय दो बज गये थे। दूसरे दिन दो घण्टे और पीछे कर दी। उस दिन उसे दो घंटे और पीछे अर्थात् चार बजे ज्वरके लक्षण प्रतीत हुये और वह शय्यापर लेट गया। अगले दिन डाक्टरको यह जब विदित हुआ तो उसने रोगीसे कह दिया कि आपको शारीरिक ज्वर नहीं किन्तु मानसिक ज्वर है। रोगीने कहा —"यह कैसे।" तब डाक्टरजीने सब वृत्तान्त कहा, उसे अनुमति दी कि तुम घड़ीका त्याग कर दो और इस घरमें भी रहना छोड़ दो। रोगीके ऐसा करनेसे वह आरोग्य हो गया।

इस कथासे भाव यह लेना है, कि मनुष्यत्व-प्राप्तिके अनेक

भाव मनमें उत्पन्न होते हैं, और उनपर चलनेकी चिन्तासे शरीर-का बहुत रुधिर रुक जाता है। अधिक चिन्ता-फिकरसे शरीरका रुधिर अधिक रुक जाता है। चिन्तातुर मनुष्य चाहे जितना अच्छा भोजन करे, व्यायाम द्वारा शरीर पुष्ट करना चाहे उसका शरीर पुष्ट नहीं होता, वरंच सूखता ही जाता है।

स०—तो क्या मनकी अधिक चिन्तासे ही बच्चोंकी दृष्टि निर्बल हो जाती है। तभी बहुतसे बच्चे छोटी अवस्थामें ही चश्मा लगा लेते हैं?

सु०—चक्षु-व्यथा, उदर-विकार आदि २ कई रोग मनकी चिन्तासे हो जाते हैं। बच्चे इस बातको तनिक भी सोच नहीं सकते।

बालक—शरीर और मन भिन्न २ हैं। यदि यह भिन्न २ न होते तो आपका कथन मैं और मेरी माता कैसे समझते। शरीर एक मात्र मनका सहायक है।

सु०—अब सुनो, किस प्रकार मनमें साधु-भाव उत्पन्न किया जाता है और सद्भाव द्वारा किस प्रकार जीवनोद्देश्य बनाया जाता है जिसपर चलनेसे मनुष्य उस न्यायकारी ईश्वरकी प्यारी सन्तान बन सकता है। इस विषयको अब मैं समझाता हूं, सुनो। लिखने-पढ़नेका भी यही फल है कि नित्य नया ज्ञान प्राप्त हो, शुभ कार्य्यमें जीवन निर्वाह हो, जहांतक हो सके माता-पिता, बहिन-भाइयों, नगरनिवासियों तथा देशवासियोंकी सेवा हो, इसीसे ईश्वरका प्रसाद और अपनी प्रसन्नता प्राप्त हो, पुस्तक-

पाठसे विद्या-प्राप्ति नहीं होती, और न बहुत पुस्तक पढ़ लेनेसे मनुष्य सुशिक्षित होता है ।

बा०—तो सुशिक्षा किस प्रकार मनुष्य पा सकता है, आप अब यह कहें ।

सु०—पुस्तकोंमें अनेक कथायें लिखी हैं,उन्हें पढ़कर दूसरोंको सुना देना शिक्षा नहीं कहाती, शिक्षाका अर्थ जीवन-गठन है । जिससे मनमें सद्भाव उत्पन्न हों, वह भाव दृढ़ हों, और मनुष्यका जीवन तदनुसार हो, इसीका नाम शिक्षा है । शिक्षा सम्पन्न होनेके कई साधन हैं, उनमें से पुस्तक-पाठ भी एक प्रकारका साधन है ।

बा०—पढ़नेके सिवा और कौन कौनसे शिक्षाके उपाय हैं ?

सु०—यदि तुम किसी दीन-दुःखी मनुष्यको मार्गमें पड़ा देखो और दया करके उसको अपने घरमें ले आओ और उसकी रोग-शान्तिके लिये प्रयत्न करो तो तुम मनमें क्या समझते हो ?

बा०—लोग मुझे अच्छा बालक कहेंगे, आपके क्लेश-निवारणार्थ प्रयत्न करनेका मुझमें भाव उत्पन्न होगा । यदि मैं अच्छा लड़का बनना चाहूं, तो मुझे यह अवश्य करना होगा ।

सु०—इसीका नाम शिक्षा है । यह शिक्षा तुमने किस प्रकार पाई है ?

बा०—यह तो मैं घरमें सदा आपको करते देखता हूं । मैंने यह शिक्षा आपहीसे प्राप्त की है ।

सु०—एक दिन मैं और तुम्हारी माता तुमको जादूघरमें

ले गया था। वहां तुमने क्या शिक्षा पाई थी, क्या क्या देखा था बतलाओ।

बा०—हां, वहां मैंने बोधोदयमें जो मच्छकी कहानी पढ़ी थी, जादूघरमें जब उसे देखा था तो मुझे बड़ा भय लगा था। वहां मैंने मनुष्य-शरीरकी सब अस्थियां देखी थीं, एक शेर और बाघका युद्ध देखा था, साहबने एक गोलीसे दोनोंको मार डाला था। इसी प्रकारकी और भी कई घटनायें वहां देखी थीं। पिताजी! एक दिन फिर आप मुझे वहां ले चलिये।

सु०—अच्छा ले चलूंगा। ऐसे स्थानोंमें जानेसे जो कुछ पढ़ा है उसको अपने नेत्रोंसे पढ़नेसे सौगुना अधिक फल होता है। अनेक प्रकारके विषय श्रवण करनेसे मनुष्यका ज्ञान बढ़ता है। इस प्रकार शिक्षा-भाण्डार पूर्ण होता है, परन्तु केवल ज्ञान-प्राप्ति ही मनुष्यके जीवनका उद्देश्य नहीं, वरंच जो सुनो, पढ़ो या देखो उसपर चलनेका नाम शिक्षा है, और उस ज्ञानका अन्य लोगोंमें प्रचार करना, और उनको उसपर चलानेका नाम, यथार्थ शिक्षा है। इसीसे मनुष्य-जीवन उन्नति लाभ करता है, इसीसे मनुष्यकी आत्मा ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त करती है, और मनुष्य परम सुख पाता है।

छठा परिच्छेद ।
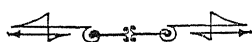
दूसरे दिन फिर सुबोधचन्द्र सरलाको मनकी शक्तिके विषयमें अनेक कथा सुनाने लगे । तब सरलाने कहा, कि कृपा-करके पहिले यह बतलाइये कि मनका पहिला क्या काम है ?

सु०—अच्छा बतलाओ मेरी मुट्ठीमें क्या है ?

स०—मैं तो नहीं जानती ।

सु०–तुम्हारे इस कथनसे ही सिद्ध होता है कि मन जिसको पहिले जानता है, उसेही मनुष्य बतला सकता है जिसका उसे प्रथम ज्ञान होता है, अर्थात् जिसको पहले देखा, सुना हो, उसीको मन जान सकता है, और उसीको मन कह सकता है, यही मनका पहला काम है ।

स०—अच्छा और मनका क्या काम है ?

सु०—इसके पीछे अनुभूति । जबतक अनुभव न हो तो काम नहीं हो सकता ।

स०—जानने और अनुभव करनेमें क्या फरक है ? क्या जो जाना हो वह अनुभव किया है ऐसा नहीं ?

सु०—नहीं, जानना और अनुभव करना दो भिन्न बातें हैं । जो बात एक मात्र सुनी जाती है, उससे मनमें वह भाव उत्पन्न नहीं होता जो देखनेसे उत्पन्न होता है. यद्यपि ज्ञान देखने

और सुननेसे एकसा होता है । परन्तु देखने और सुननेसे मनके भावमें बड़ा अन्तर होता है । अब तो समझमें आ गया है ?

स०—अब समझ गई ।

सु०—अनुभूतिके साथ शोक, दुःख, विरक्तता और प्रेम, क्रोध और अभिमान, आदि २ मनके भाव मिले रहते हैं, यह अनुभूतिका ज्ञानसे विशेष काम है ।

स०—ज्ञान और अनुभवके अनन्तर मनके जो और काम हैं, वह भी कृपा करके वर्णन करें ।

सु०—ज्ञान और अनुभवके अनन्तर चिन्ताशील मनुष्य सोचता है अर्थात् इसके अनन्तर चिन्तन करना मनका काम है ।

स०—किसी विषयके जान लेनेसे और उसका अनुभव प्राप्त कर लेनेसे मनुष्यके मनमें इच्छा उत्पन्न होती है । इच्छा-शक्ति उत्पन्न होनेसे मनुष्य काममें लगता है । इच्छाके अधीन हो विपत्तिमें सम्बन्धियोंकी सहायता चाहता है और सम्बन्धियोंके शुभ समाचार उनको बधाई देने जाते हैं । मेरी समझमें यह आता है, यह ठीक है या नहीं ?

सु०—हां, यह सब ठीक है । अनुभवके अनन्तर ही इच्छा उत्पन्न होती है, ज्ञान और अनुभवके हो जानेपर सोचना और नाना प्रकारके कार्य्य-सिद्धिके उपाय चिन्तन करना यही इच्छा-शक्तिका पूर्व काम है । इस कथनसे साफ जान पड़ता है कि ज्ञान, अनुभव और इच्छा यह तीन ही मनके विशेष काम हैं । और मनकी इन तीन शक्तियोंको यथार्थ रूपसे बर्त्तावमें लाकर

अर्थात् ज्ञान-अनुभवसे जिस कार्य्यको करनेकी इच्छा उत्पन्न हो उसको सोच समझकर करनेसे ही काम-सिद्धि मनुष्य प्राप्त कर सकता है। इस विषयको और भी अच्छी तरह खोलकर बतला दीजिये।

सु०—सुनो,ज्ञान, अनुभव और इच्छामें अतीव गूढ़ सम्बन्ध है। मान लो कि तुमको चोट लगी है, चोट लगते ही तुमको पीड़ा प्रतीत होगी। चोटका लगना और पीड़ाका अनुभव करना मनका काम है, और उस पीड़ाकी निवृत्ति-चिन्तन किसका काम है? वह भी मनहीका काम है।

स०—पुत्र-शोक-ग्रसित माता क्या कुछ कर सकती है, अथवा मनकी ऐसी चिन्तायुक्त अवस्थामें स्वामीकी शय्याके निकट आ सकती है,या कोई औषधि सेवन कर सकती है?

सु०—ठीक है, घोर शोकावस्थामें तथा प्रियदर्शनजनित अतीव आनन्द-प्राप्तिकी अवस्थामें स्मृति-शक्ति और कर्त्तव्य-ज्ञानका एकाएक ह्रास हो जाता है। परन्तु उस दशामें भी ज्ञान और इच्छाशक्तिके भाव काम करते हैं। स्मरण करो कि पहिले जिस चोटका वर्णन किया है यदि वह चोट बड़ी भारी हो तो तदनुसार ही पीड़ा भी अधिक होती है। परन्तु उस दशामें यदि फिर चोट और लग जावे तो क्लेश और भी बढ़ जाता है और उसके निवारणके लिये उतना ही उत्कट प्रयत्न किया जाता है। ज्ञान सदैव किसी न किसी भावको साथ लेकर उत्पन्न होता है। कभी तो ज्ञानके साथ साथही आनन्द, शुभ इच्छा, क्रोध आदि कोई न

कोई भाव उदय हो जाता है। हमारे उस अनुभवके साथ २ ही भावोंकी—मनकी दशा बदलती रहती है, और तदनुसार प्रयत्न करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। सरला! इससे तुमने क्या समझा है?

स०—मैं बहुत कुछ समझ गई। पुत्र! तुमने क्या समझा है?

बा०—हां, अब तो मेरी समझमें भी आ गया है।

स०—अब आप यह बतलायें कि उस दशामें इच्छाशक्ति क्या करती है, किस प्रकार मनुष्यको सुपथगामी बनाती है?

सु०—यह जो मेरे हाथमें पुस्तक है यह एक बड़े सुप्रसिद्ध विद्वान "हारियेट मार्टिनिड" (Harriat Martnead) हुये हैं। इसमें गृहशिक्षाका विषय पूर्ण रूपसे वर्णित है। शिशुशिक्षाके विषयमें जो कुछ मैंने कहा है सब इसीके आधारपर वर्णन किया है। अब बालककी इच्छाशक्ति बढ़ानेके लिये क्या २ उपाय करने उचित हैं वह तुमको समझाता हूं।

स०—आपने जो आजतक मुझसे कहा है मैं पूर्ण सावधानीसे तदनुसार चलकर बालकमें सद्भाव उत्पन्न करनेकी चेष्टा करती रही हूं।

सु०—बालकोंमें इच्छाशक्ति (Will-power) कितनी प्रबल होती है। जिस बातके जाननेके लिये वह उद्यत होते हैं उसे जाने बिना नहीं रुकते। छोटे २ कामोंको पूर्ण करानेके लिये भी वह कितनी अड़ी (जिद्द) करते हैं। बालक जो कुछ देखता है उसीके जाननेके लिये वह अतीव प्रयत्न करता है। बच्चा जितना ज़िद्द

करनेवाला होता है बड़ा होकर वह उतनी ही उन्नति करता है, परन्तु इतना विचार माता-पिताको अवश्य करना चाहिये कि बालक-बालिकाकी जिद्द उत्तमोत्तम कार्य्योंके लिये हो। जिद्द ही मनुष्यको उन्नत और जिद्द ही मनुष्यका पतन करती है।

बा०—यह कैसे ? एक ही कारण दो विपरीत फल कैसे कर सकता है ?

सु०—अग्निसे भोजन पकता है, अग्निसे रेल चलती है और असवाधनतासे उसी अग्निसे बच्चे जल मरते हैं और गृह-दाह हो जाते हैं, ठीक इसी प्रकार जिद्द भी कार्य्य करती है। यह बालककी जिद्द सुपरिचालित होनेपर बच्चेके लिये कल्याण-कारी और बुरी जिद्द विनाशकारी हो जाती है।

इस संसारमें बहुतसे भद्र पुरुष हुए हैं जिनके नाम लोग बड़ो श्रद्धा और भक्तिसे लेते हैं। वह सब ही इच्छा-शक्ति-सम्पन्न हुए हैं (और यह भो समझ लो कि प्रबलेच्छ-ापूर्तिका नाम ही जिद्द है)। वह सब जिद्दी हुये हैं। यही प्रबलेच्छा यदि शुभ हो तो बालक बड़ा होकर देशके गौरवका कारण बनेगा। और यदि यही प्रबलेच्छा बुरी होगी तो वह बच्चा बड़ा होकर पिता-पितामहके नामको डुबोनेवाला और कलंकी हो जायेगा।

स०—इस विषयका दृष्टान्त भी यदि कोई हो तो वर्णन कीजिये।

सु०—मेरे देखनेकी बात है कि एक ७ वर्षके बच्चेको एक अध्यापकने विना अपराध मारा था। बालकने बहुतेरा कहा कि

गुरुजी आप पहिले मालूम तो करें । मैंने कोलाहल नहीं किया । गुरुजीके पूछनेपर उनको विदित भी हो गया कि इसने कोलाहल नहीं किया, परन्तु उन्होंने अपने निश्चित सन्देहके अनुसार उसकी कोमल पीठपर दो चार बेत लगा ही दिये जिसका फल यह हुआ कि बच्चा घरसे तो यथासमय पुस्तकादि ले चला आता परन्तु पाठशालामें न जाता । दो तीन दिन पाठशालामें उसे न आता देख अध्यापकजीने उसके पितासे कहला भेजा । उसके पिताने भी बुरी तरहसे झिड़ककर पुस्तकें दे उसे स्कूलमें भेज दिया । यह बालक पाठशालामें तो गया परन्तु पढ़नेकी ओर ध्यान ही नहीं देता था, यह देख गुरुने फिर इसके कान खेंचे और एक दो थप्पड़ भी मार दिये । परन्तु बच्चेकी प्रबल इच्छा और थी, उसने फिर भी पढ़नेकी ओर ध्यान न दिया । दूसरे दिन फिर वह पाठशालामें न आया । यह बालक पाठशालाके उत्तम बालकोंमें था ।

इसलिये अध्यापकने उसको लानेके लिये ३-४ बालक भेजे । जब बालक निकले तो उन्होंने इस बालकको देख लिया और पकड़ो २ चिल्लाकर उसको पकड़ लिया । गुरुजीने दो चार बड़े २ बालक और दौड़ा दिये । उन्होंने जाकर इसको पकड़ लिया । किसीने पांव और किसीने सिरकी ओरसे पकड़ा और इस प्रकार उसे पाठशालामें ले आये । अध्यापकजीने इसे पकड़ लिया, और बालक अपनी २ जगहपर जा बैठे । गुरुजी गुस्सेमें आ फिर अपना बेंत उठानेको जब उसके हाथ छोड़कर उठे तो वह बालक

छलांग मार बाहर भाग गया, बहुतसे बालक उसके पीछे भागे, परन्तु वह इस घरसे उस घर और उस घरसे इस घर भागता रहा और अन्तमें एक घरमें घुसकर झट उसने अन्दरसे दरवाजा बन्द कर लिया। इतनेमें बेंत हाथमें लिये गुरुजी भी वहां आ पहुंचे। इतनेमें उसका पिता भी वहां आ गया। उसने भी पहले बहुत कुछ प्यार प्रलोभनकी बातें कहीं और फिर भय भी दिखलाया परन्तु बच्चेने दरवाजा न खोला। अन्तमें हारकर वह सब लोग वरंच उसका पिता भी चला गया।

इतनेमें १० बजेका समय हो गया, तब घरके एक बालकने उसे कहा कि अब बाहर कोई नहीं है तुम इस खिड़कीके रास्ते निकल जाओ। उसने पहिले तो विश्वास न किया परन्तु अन्तमें उसके कहनेमें आकर जब उसने दरवाजा खोला तो अध्यापकजीने उसे झट पकड़ लिया, उन कड़े वज्रसे हाथमें पकड़ा जाकर वह बुरी तरहसे चिल्लाने लगा। परन्तु इसको वह मुख्याध्यापकके पास ले गये और उनके आगे अध्यापकजीने सब बातें पूर्ण रूपसे कह सुनायीं।

मुख्याध्यापक महाशयजीने इसकी इतनी प्रबलेच्छा-शक्ति देख प्यारसे पूछा,—"बेटा! तुम पाठशालासे क्यों भागते हो?" उसने कुछ उत्तर न दिया, चुपके खड़ा रहा। उसका पिता भी पास था। उसने फिर उसको पकड़कर मारना चाहा। मुख्याध्यापकने कहा—"हां हां, मारो मत। बेटा, बतलाओ, बात क्या है?" बालकने कहा—"मैं इस पाठशालामें नहीं पढ़ूंगा।" "बेटा,

यह क्यों ?" अन्तमें उस बालकने अध्यापकने जो बिना अपराध उसे मारा था वह सब कह दिया और कमीज उठाकर अपनी पीठपरके बेंतके चिह्न दिखा दिये जिन्हें देख मुख्याध्यापकजीने उस श्रेणीके अध्यापकको बुलवाकर भर्त्सना की और कहा कि इस प्रकार फिर किसी बालकको न मारना।

उस बालकको बड़ी २ मीठी बातें कह और तसल्ली दे क्लासमें पढ़नेके लिये भेज दिया। परन्तु तनिकसी भूल होनेपर अध्यापक उसका अधिक तिरस्कार करने लगता, इसीसे उस बालककी स्वच्छ बुद्धिमें परिवर्त्तन आने लगा और कई प्रकारकी शरारतें उसे सूझने लगीं।

बुरी प्रकृतिके अध्यापकों तथा बेसमझ माता-पिताके क्रूर आचारसे बहुतसे बच्चे बिगड़ जाते हैं। उनके दुराचारसे बच्चे कैसे जिद्दल और दुष्ट हो जाते हैं इसका वर्णन करना कठिन है।

इसीलिये मैंने कहा है कि माता-पिता और अध्यापककी असावधानी और गलतीसे ही बच्चे सहज ही कुपथगामी हो जाते हैं। इनके ही सुविचारसे बालक सुपथगामी बनते हैं, और सुपथ-गामी बच्चे ही अपने और अपने जन-समाजके लिये कल्याणकारी हो सकते हैं।

सातवां परिच्छेद ।

स०—अब मैं भलीभांति समझ गई कि यदि गुरुजी उस बच्चेकी बात शांतिपूर्वक सुनते और उसके दोषको निर्धारण करते तो उस बालकको न इतना मारते और न उसका मन पढ़नेसे इस प्रकार उचटता। बिना सोचे समझे कभी बालकको गुरुको क्या, माता-पिताको भी दण्ड नहीं देना चाहिये।

सु०—यह मैं तुमको पहिले ही कह चुका हूं कि बालक जो कुछ कहे उसे बिना सोचे समझे उसको झिड़क देना या मारना बड़ा अन्याय है। ऐसा करना बालककी सच्छिक्षा और शासनपर पानी फेरना है। बालककी अभिलाषाको बिना सोचे समझे विनाश कर देनेसे बच्चेपर बड़ा बुरा असर पड़ता है। बालकके हृदयमें अनेक अभिलाषायें उत्पन्न होती हैं। जो अभिलाषा बालककी तुम्हारी समझमें बुरी जान पड़े उसे दूर करनेके लिये बच्चेको उसके गुण दोष समझाकर उसके हृदयसे उस अभिलाषाको दूर करनेका प्रयत्न करो।

स०—बालकके हृदयमें कई वासनायें उत्पन्न होती हैं। आपने कहा है, उनका दबाना भी आवश्यक है। तो फिर यह समझमें नहीं आता कि इच्छा-भङ्ग करनेसे उसके मनकी शांति दूर न हो यह कैसे सम्भव है? मेरा यह विचार है कि बालककी इच्छा

भो पूरी न की जाये और उसकी शांति मनकी भी बनी रहे यह नितान्त असम्भव है।

सु०—मान लो, कि तुम्हारा पुत्र शीतकालके वर्षाके दिन चिड़ियाघर देखनेके लिये अभिलाषा करता है और तुमको उसने यह हठ कर दिक कर दिया है, तो फिर तुम क्या करोगी ?

स०—मैं उसे समझाऊंगी कि वर्षामें जानेसे शीत लगेगा, कपड़े भींग जायेंगे, दुःख होगा; इसलिये आज जाना उचित नहीं।

सु०—यदि बालक कहे कि मैं गरम कपड़े पहन लेता हूं, बन्द गाड़ी मंगवा लो फिर तो दुःख न होगा, तो फिर तुम क्या कहोगी ?

स०—फिर मैं क्या कहूं यह आप ही बतला दीजिये। मैं तो यही कहूंगी कि आज मैं नहीं जाऊंगी।

सु०—इस प्रकारके कथनसे तो बच्चेका मन शांत न होगा इसलिये ऐसा कहना तो उचित नहीं। क्या और कोई उपाय तुम्हारी समझमें नहीं है ?

स०—क्या कहना चाहिये आप ही बतलाइये।

सु०—बालकसे पूछो, चिड़ियाघरमें क्या करने जाओगे। बालक अवश्य उत्तर देगा कि "वहां जो पशु-पक्षी हैं उनको देखूंगा।" तुमको कहना चाहिये कि यदि घरमें ही तुमको वह दिखलाता हूं तो फिर वहां जाकर क्या करोगे। बालक अवश्य कहेगा कि दिखलाओ क्या दिखाती हो। तो तुमको उचित है कि

कुछ खिलौने या चित्र फोटोके उसे दिखला दो, या कोई नई वस्तु उसके आगे ला दो। वह अवश्य ही तुम्हारे पास बैठकर उसके देखनेमें लग जायेगा। फिर तुम उसको धीरे २ वर्षामें बाहर जानेकी तकलीफोंको समझा दो; जब बच्चा समझ जायेगा तो स्वयं लज्जित होगा। और अपनी भूल जानकर फिर ऐसा कभी न करेगा।

स०—यही अच्छा उपाय है। परन्तु मेरे लिये बड़ा कठिन है, यह स्त्रियोंमें बड़ा दोष है।

सु०—केवल यही नहीं, इस प्रकार समझानेसे बच्चोंके सब दोष एक एक करके दूर किये जा सकते हैं, बालकको कोई उत्तम चित्रवाली पुस्तक ऊपरसे ही दिखला दो और यह कह दो कि इसके भीतर और भी बहुतसे विचित्र चित्र हैं,परन्तु यह उसे उस समय दिखलाओ जब उसके भोजन करनेका समय हो। बालक झट कह देगा कि मैं पहिले इन चित्रोंको देखूंगा फिर भोजन करूंगा। एक दो बार उसको दिखाकर कह दो कि इन चित्रोंके नाम मैं तुमसे ५ बजेतक सुन लूंगी। यदि तुमने सुना दिये तो तुमको और इससे भी उत्तम चित्र दिखलाऊंगी तो देखो बालक खाना-पीना भी भूलकर किस प्रकार अभ्यास करता है। सरला ऐसा करके देखो यह कैसी उत्तम शिक्षाकी विधि है।

स०—कुछ दिन व्यतीत हुए, मैंने भी ऐसा ही किया था। एक दिन बालक पढ़ता नहीं था। मैंने उसे पढ़नेके लिये कहा परन्तु वह पढ़नेके स्थान गोलमाल करता था, यह देख मैंने कहा

कि अच्छा न पढ़ो मैं तुमको तुम्हारी खेलनेको गाड़ी और पिस्तौल नहीं दूंगी। यह सुनकर बच्चा पढ़ने लग गया था। फिर एक दिन इसने कहा कि "मैं ईश्वरचन्द्रके साथ खेलने जाता हूं।" मैंने कहा "यदि तुम अपना पाठ याद करके न सुना लोगे तो मैं तुमको जाने न दूंगी। पहले यदि अपना पाठ याद करके सुना दिया करोगे तो मैं जाने दूंगी।" उस दिनसे नित्य यह पहिले अपना पाठ अच्छी तरहसे याद कर लेता है और फिर खेलने जाता है।

सु०—मैं पहले ही कह चुका हूं कि बच्चेको प्यारसे समझाना ही अच्छा है, भय और मारसे बच्चेकी स्वतंत्रता नाश करनेसे बच्चेकी उन्नति रुक जाती है। स्वतंत्रतासे ही बालक अपने मनका भाव प्रकट कर सकता है, और बच्चेके भाव-ज्ञानसे ही माता-पिता उसे अच्छे मार्गपर सुगमतासे चला सकते हैं, जिससे उसमें मनुष्यत्व उत्पन्न होता है और वह बढ़ता है। एक और भी रीति है जिसपर चलनेसे छोटी उम्रसे ही बच्चा अपने जीवनकी शृङ्खला और मर्य्यादा स्थिर कर लेता है और सदा अपने कर्त्तव्य-पालनमें लगा रहता है। इस प्रकार चलना अतीव आवश्यक है।

स०—यह आपका कथन मैं अच्छी तरहसे नहीं समझी। किस समय कौनसा काम करना लाभकारी है, और किस कामके पीछे कौनसा काम करना चाहिये, इसका प्रति दिन अभ्यास करना चाहिये। क्या आपके कथनका यही अभिप्राय है?

सु०—हां, इस प्रकार और नाना विधिके सदुपायोंसे बालक बालिकाओंको दुर्मार्गसे हटा उनको किसी प्रकार भी अशान्तिमें

बिना डाले, उनको सन्मार्गपर लाया और नियमबद्ध किया जा सकता है क्योंकि विशेषकरके इस बातका ध्यान रखना उचित है, कि उनकी स्वाधीनताका नाश न हो। इसीसे संसारमें वह कल्याण साधन कर सकता है, और उनकी स्वाधीनता-विनाशसे कई प्रकारकी हानियें उत्पन्न हो जाती हैं।

इसका एक उत्तम उदाहरण है। सरला! तुमने बङ्गालीमें मि० गार्डफील्ड अमरीकाके प्रेसीडेंटकी जीवनी पढ़ी होगी। यह एक निर्धन किसानका पुत्र था। बाल्यावस्थासे ही यह पिताके साथ रहता था, किन्तु जो कुछ थोड़ा बहुत समय मिलता था, उसमें पढ़ता रहता था। परन्तु इसमें यह एक बड़ा गुण था कि यह माताकी आज्ञाका पालन करता था। जब इसने दो चार पुस्तकें पढ़ लीं तो एक पुस्तकमें इसने समुद्रका वर्णन पढ़ा, जिसे पढ़कर इसकी परम इच्छा हुई कि मैं जहाजका काम सीखूं और समुद्रको देखूं। इसी लालसासे उसने और सब काम छोड़-छाड़ समुद्र-यात्राकी तय्यारी की और माताजीकी आज्ञा लेनेकी प्रार्थना की। परन्तु माताजीने उसे आज्ञा न दी, जिससे उसे कुछ कालके लिये अपनी इच्छाका दमन करना पड़ा। अन्तमें उसकी प्रबल इच्छा देख माताने आज्ञा दे दी, और यह बड़े प्रसन्न मनसे घरसे चल दिया। समुद्र-तटपर पहुंच इसे पहले तो जहाजकी नौकरी न मिली परन्तु अन्तमें बड़े यत्नके अनन्तर इसे एक जहाजमें कोयले डालनेके कामपर फायरमनकी जगह मिल गई। जहाजके छोटे २ काम करनेवाले नौकर प्रायः दुराचारी,उजड्ड और भ्रष्टा-

चारी होते हैं। उनको देख यह अतीव घबराया, परन्तु उसकी साधु प्रकृतिसे बहुतसे लोग उसके अधीन हो गये। परन्तु जहाजका काम करते २ उसे ऐसी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं, कि यह दिक आ गया और इसको घर याद आ गया। फिर बीमार होकर यह वहांसे घरको चल दिया और कुछ दिनोंके अनन्तर यह अपने शहरमें आ पहुंचा। यहां पहुंचकर इसे विचार उत्पन्न हुआ कि मैं देखूं मेरी माता क्या कर रही है। इसी विचारसे वह आधीरातके समय घरमें पहुंचा।

गार्डफील्डकी माता नित्य रात्रि कालको जाग कुछ पहले पुस्तक पढ़ती और फिर दत्तचित्त हो बड़े नम्र भाव और भक्तिसे नित्य ईश्वरके आगे प्रार्थना करती थी कि "हे जगत्पिता परमेश्वर! आप मुझ अनाथिनीपर कृपा करें और मेरे प्राणोंके आधार अपने दास मेरे पुत्रको सानन्द और प्रसन्न रक्खें और उसे शीघ्र मुझे मिलायें।"

इस प्रकारकी माताकी प्रार्थना सुन गार्डफील्ड माताके चरणोंमें जा गिरा। इस प्रकार एकाएक पुत्रको आया देख माताने गले लगा लिया और दोनों कुछ कालतक रोते रहे।

परमात्मासे शुद्ध मन और भक्ति भावसे प्रार्थना करनी भी सन्तानको सत्पात्र बनानेका एक उत्तम उपाय है जिसकी ओर भारतवर्षकी बहुत थोड़ी माताओंका ध्यान जाता होगा। इसकी ओर ध्यान जाना भी परम आवश्यक है।

स०—मैं तो यही समझती हूं कि गार्डफील्डकी माता

इलजाकी प्रार्थनाने ही उसके पुत्रको घरमें आनेकी प्रेरणा की थी। जब चिर बिछुड़े माता-पुत्र मिले होंगे तो माताको तो परम आनन्द प्राप्त हुआ होगा।

बा०—पिताजी! गार्डफील्डने क्या किया था, जिससे उसने इतना नाम पाया था।

सु०—वह बुद्धिमती धर्म्मपरायणा माताका पुत्र था और सदा माताकी आज्ञाका पालन करता था। यदि तुम भी अपनी माताकी आज्ञामें चलोगे तो तुम भी गार्डफील्डके समान नाम और ऐश्वर्य्य पाओगे।

बा०—मां! मैं सदा आपकी आज्ञामें चलूंगा और यथाशक्य संसारमें नाम पानेका प्रयत्न करूंगा।

आठवां परिच्छेद।

—*—:*:—*—

अब सुबोधचन्द्रने अपने घरमें ही एक अध्यापिकको पढ़ानेके लिये नियत कर एक प्रकारकी छोटे बच्चोंकी पाठशाला खोल दी। अध्यापिका इतनी बड़ी विद्यावती न थी। सरला उसकी त्रुटियोंको बड़े प्रेम और मधुर शब्दोंमें उसे समझा देती, जिससे वह तनिक भी बुरा न मानती।

अध्यापिका पढ़ाती थी और सरला बालक-बालिकाओंको चाल-ढाल और मनके भावोंको देखती थी। किस बालककी कैसी रुचि है, किस बातसे कौन बालक असन्तुष्ट होता है, कौन जिद्दी है आदि २ इन्हीं बातोंपर ध्यान रखती थी और इस विषयका प्रति दिन समाचार सुबोधचन्द्रको सुनाती और उनकी सम्मति लेती।

अध्यापिकाके पढ़ानेके अनन्तर सरला और अध्यापिका बच्चोंको बड़ी सुन्दर २ कहानियां सुनातीं और उनसे उनको अच्छे २ उपदेश देतीं और प्राचीन लोगोंके जीवन-चरित्र सुनातीं; जिससे वीरता, स्वार्थ-त्याग, लोक-सेवा, धैर्य्य, क्षमा, कामका करना, ईश्वरसे प्रेम और उसकी भक्ति आदि २ का बीज बालकोंके मनमें बोया गया।

इसी प्रकार भूगोल और इतिहासकी शिक्षा भी उनको दे दी।

एक पृथ्वीका गोला Globe मंगवाकर, बच्चोंको पृथ्वीका गोल होना सुगमतासे समझा दिया ।

इन दोनोंके इस प्रकारके यत्नसे सब बालक-बालिकाओंने थोड़े कालमें ही कई पौराणिक कथायें कण्ठस्थ कर लीं, और नाना प्रकारके ऐतिहासिक वृत्तान्त भी उनको याद करा दिये; जिसका फल यह हुआ कि सब बालक कठिन २ विषयोंको भी सुगमतासे समझनेके योग्य हो गये ।

एक दिन सरलाने सुबोधचन्द्रजीसे कहा कि बहुत दिन हुये जब यह आपका पुत्र अभी बहुत छोटा था, तो आपने बच्चोंकी इच्छा-शक्ति उत्पन्न करने और उसके बढ़ानेके विषयमें कुछ थोड़ासा कहा था । आज इस विषयमें सविस्तर वर्णन करें ।

सु०—अच्छा सुनो, आज मैं बच्चोंके भय और साहसके विषयमें कहता हूं, क्योंकि बालकोंकी इच्छा-शक्ति उनके भय और साहसपर मन्द या उज्ज्वल होती है । भयसे इच्छाशक्तिका विनाश और साहससे विकास होता है ।

स०—यह विषय अतीव कठिन है, कृपा-पूर्वक इसे इस प्रकार कहें जिससे पूरी तरहसे मेरी समझमें आ जावे ।

सु०—अच्छा मैं दृष्टान्त देकर कहता हूं, सुनो ।

तुम देखती हो कि कई छोटे बच्चे एक अपरिचित पुरुषके पास जानेसे कैसे डरते हैं । एक दिनका वृत्तान्त है कि मेरे एक मित्रका एक सालका बच्चा अपने पिताके साथ मेरे घर आया । जब उसे मैं गोदमें लेने लगा तो वह रोकर पिताके मोंढ़े

लग गया। मेरे पास आनेसे बुरी तरह डरता था और जबतक मैं उसे छोड़कर दूर न चला गया तबतक वह रोता रहा।

मैं उसके सामने दूसरे छोटे बच्चेको गोदमें ले प्यार करने लगा। फिर मैंने कहा "बेटा, तुम भी आओगे ?" उसने कहा "न" परन्तु पहिलेसे उसका साहस बढ़ गया। फिर मैंने दूसरे बच्चोंसे खेलना आरम्भ कर दिया। फिर तो उसको इतना साहस हो गया कि वह भी उनसे खेलना चाहने लगा। यहांतक कि थोड़े कालमें उसका भय दूर हो गया और मेरे पास आनेके लिये उत्कण्ठित हो गया। यहांतक कि जब मैंने उसे एक दो बार लेकर उससे प्यार किया तब तो उसका यह हाल हो गया, कि वह मेरी गोदीसे उतरता ही न था।

भाव यह है कि भय दूर होनेसे बच्चोंमें साहस बढ़ता है और साहससे इच्छा-शक्ति बढ़ती है।

स०—छोटे २ बालकोंका भय दूर करनेका तो यह बहुत सुन्दर उपाय है, परन्तु बड़ी आयुके बच्चोंका भय किस प्रकार दूर किया जा सकता है वह भी कहिये।

सु०—चेष्टासे भय दूर हो जाता है। जैसा बालक हो वैसी ही चेष्टा करनी चाहिये।

स०—यही तो मैं जानना चाहती हूं, कि कैसी चेष्टा करनी चाहिये।

सु०—बालकको उत्साही करनेपर उसका साहस बढ़ता है और बालकके निराश होनेसे उसकी भीरुता बढ़ती है। इसीसे माता-

पिताको यही प्रयत्न करना चाहिये जिससे बालकमें आशा (उत्साह) बढ़े । आशासे ही मनुष्यमात्र यत्न करते हैं । निराशाके तुल्य मनुष्य-जीवनका अन्य कोई शत्रु नहीं । मनुष्य जैसी आशा करता है तदनुसार ही मनुष्य बननेका उद्योग करता है ।

स०—यह तो आपने ठीक कहा है "आशापर ही दुनिया कायम है ।" आशा ही मनुष्यके साहस और उत्साहको बढ़ाती है । आशा-पूर्त्तिके लिये ही मनुष्य अनेक यत्न करता है ।

सु०—इसका सहज उपाय यह है कि तुम सदा समझदार बच्चोंसे पूछा करो कि "तुम पढ़-लिखकर क्या करोगे ?" बहुतसे बालक तो इसका कुछ उत्तर देही न सकेंगे, परन्तु कोई २ बालक इस प्रश्नका कुछ उत्तर देंगे, पर जीवनोद्देश्य अपना वह भी प्रकट नहीं कर सकेंगे ।

एक समयका वृत्तान्त है कि मैंने एक १६ वर्षके बालकसे जिसने प्रवेशिकाकी परीक्षा दे ली थी वरंच उत्तीर्ण भी हो चुका था यही प्रश्न किया था, कि तुम अपने जीवनमें क्या करना चाहते हो ? उसने उत्तर दिया कि अभी तो मैंने कुछ निश्चय नहीं किया । मैंने आश्चर्य्य होकर उससे कहा कि तुम इतने बड़े हो गये और अभीतक तुमने अपने जीवनका उद्देश्य स्थिर नहीं किया । इससे जान पड़ता है कि भारतवर्षमें जीवनोद्देश्य स्थिर करना जानते ही नहीं । जबतक यह स्थिर न किया जावे मनुष्य उन्नति लाभ कर ही नहीं सकता । जीवनोद्देश्य-विहीन जीवन समुद्रमें बिना पतवारकी नौकाके समान है ।

अंग्रेज लोग अतीव बाल्यावस्थामें ही अपना जीवनोद्देश्य स्थिर कर लेते हैं। इसीसे उन्होंने इतनी उन्नति प्राप्त की है। उनके माता-पिता उनकी रुचिके अनुसार उनका जीवनोद्देश्य स्थिर करा देते हैं। भारतवर्षमें भी प्रत्येक माता-पिताका यह मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये कि अपनी संतानका जीवनोद्देश्य उनकी रुचिके अनुसार स्थिर कर दें।

स०—माता-पिताके लिये यह समझना कि हमारे पुत्रकी किस ओर रुचि है सुगम नहीं। यदि बच्चा प्रत्येक काम बड़े उत्साहसे करे, और साधारण रूपमें वह सब ओर उन्नति प्राप्त करता जान पड़े तो ऐसे बालकका जीवनोद्देश्य किस प्रकार स्थिर किया जावे?

सु०—पहले तो उसको उच्च शिक्षा प्राप्तिका लक्ष स्थिर कराना चाहिये, इसीसे बालक सन्मार्गगामी हो जायेगा। और साथ ही साथ यह भी समझा देना उचित है कि शुद्धाचारी होना ही मनुष्यका मनुष्यत्व है, यह एक मात्र उन्नतिका साधन है।

स०—क्या अन्य उपायों द्वारा धनोपार्जन करना अन्याय है?

सु०—जीविका उपार्जन करनेके अनेक उपाय हैं। परन्तु मेरी सम्मतिमें साहित्य, विज्ञान, दर्शन और गणित प्रभृति अनेक शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर माननीय पुरुष बनना ही धनोपार्जनका मुख्य साधन है। परन्तु साथ ही आप सदाचारी और धार्म्मिक होना भी आवश्यक है जिससे युवा अवस्थामें सब प्रकारकी विशेष सहायता मिलती है।

नवाँ परिच्छेद

स०—इस विषयको भलीभांति सविस्तर वर्णन कीजिये।

सु०—इस संसारमें अन्यान्य विभागके जो जो कार्य्य करने पड़ते हैं उनमें प्रायः कुटिल मनुष्योंसे काम पड़ता है।

संसारमें जितने कठिन २ कार्य्य हैं उन सबमें प्रायः मनुष्यको पड़ना पड़ता है, इसीलिये सच्चरित्र मनुष्य भी पूर्ण रूपसे अपने चरित्रकी रक्षा नहीं कर सकते। धर्म्म-जीवनपर चलनेके लिये विशेष सहायता नहीं मिलती।

स०—यह कैसे? क्या एक वकील झूठा मुकद्दमा लिये बिना नहीं रह सकता? क्या मजिस्ट्रेट विना पक्षपात मुकद्दमोंका फैसला नहीं कर सकता? क्या एक मुनसिफ पूर्ण रूपसे विवेचना नहीं कर सकता? यदि यह लोग इस प्रकार करें तो क्या सर्व-साधारण सन्मार्गमें नहीं चल सकते?

सु०—यह सब तुमने ठीक कहा है, पूर्वोक्त विषयोंपर चलने-पर सब लोग उनकी बड़ाई करेंगे, परन्तु उनका अपना जीवन सद्‌गुण-संपन्न इतनेसे नहीं हो सकता।

स०—यह कैसे?

सु०—यह लोग भी बड़े होकर अपने अपने पहिले अभ्यासको जो इनकी बाल्यावस्थामें दृढ़ होते हैं छोड़ नहीं सकते; क्योंकि

बाल्यावस्थामें सकल सद्गुण ग्रहण करनेकी शक्ति ही उत्पन्न नहीं होती है। बाल्यावस्थाकी ही सच्छिक्षासे मनुष्य बड़ी अवस्थामें सदाचारी बन सकते हैं। वह अवस्था इनकी स्कूलके अध्यापकोंपर निर्भर है जो स्वयं सच्छिक्षा-संपन्न नहीं होते, वह शिष्योंमें साधुभाव—धर्म्म-जीवन किस प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं। इसीलिये स्कूल कालिजोंके शिक्षित-जन उक्त गुण-संपन्न नहीं हो सकते।

स०—मुझे जान पड़ता है कि इसका एक और कारण है। बाल्यावस्थामें अध्यापकका काम माता-पितापर निर्भर होता है और वह इस भारको आप नहीं उठाते और अध्यापकोंपर ही बच्चोंकी शिक्षाका भार डाल देते हैं।

सु०—तुमने ठीक कहा है। इस विषयको मैं सविस्तर वर्णन करता हूं।

यूरपकी सुप्रसिद्ध विदुषी कबने एक पुस्तकमें लिखा है कि "आजकलके नास्तिक लोग बालकोंके हृदयमें ईश्वरके अस्तित्व-का विनाश कर देते हैं। स्वच्छबुद्धि बालक बुरे अध्यापकोंके हाथमें पड़कर नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि अध्यापकसे शिष्य अधिक बढ़ जाते हैं। बालक स्वयं कुछ नहीं जानते किन्तु विचार-शक्ति उनमें उत्पन्न हुई २ होती है। जो कुछ उनको बतलाया या सिखाया जाता है उसे ही वह अच्छा समझते हैं और उसीमें उन्नति कर जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि अध्यापकका काम कितना भारी है और किस प्रकारके मनुष्योंको यह भार ग्रहण

करना चाहिये। अब इस विषयमें एक दो उदाहरण बतलाता हूं सुनो ।

स०—बहुत अच्छा, आप अवश्य कहिये ।

सु०—काशीपुरीके हिन्दूकालिजमें पहिले २ एक अंग्रेज जिनका नाम डिरो जिउ था बड़े बुद्धिमान और चतुर पुरुष थे । इनके चरित्रमें ऐसा प्रभाव था कि सब लड़के उनका अनुकरण करते थे । उनके शिष्य जैसे योग्य बने ऐसे कहीं विरले ही देखनेमें आते हैं। हिन्दूकालिजके विद्यार्थी आजतक उनकी श्लाघा करते हैं ।

स०—और भी कोई उदाहरण याद हो तो वह भी कहिये ।

सु०—तुमने रामतनु लाहरी महाशयका नाम तो सुना होगा ।

स०—यह वही महाशय हैं न जिनके विषयमें आपने उसके बालकको झूठ बोलकर परचानेका वर्णन सुनाया था ।

सु०—हां, वह डिरो जिउके शिष्य हैं, और २ भी बहुतसे ऐसे पुरुष जो यहां बड़े २ धर्म्मात्मा विद्वान हुये हैं वह भी उन्हींके शिष्य थे । अच्छे अध्यापकके होनेसे ही छात्र सदाचारी निकलते हैं ।

स०—मैंने उनकी जीवनी पढ़ी है। वह बड़े धर्म्मात्मा थे, उन्होंने सैकड़ों विद्यार्थियोंको मनुष्य बना दिया था। अब पूरी तरहसे मेरी समझमें आ गया है कि सच्चरित्र और धर्म्मात्मा अध्यापक देशके कल्याणके स्वरूप होते हैं। आपका

पुत्र युवा होकर योग्य अध्यापक यदि बन जाये तो मैं अपना और आपका प्रयत्न सफल समझूंगी। आप कृपा करके अभीसे इसको ऐसी शिक्षा दें जिससे यह सब भार उठा सके और अपने जीवनका यही उद्देश्य बना ले।

अबतक आपने संतानमें इच्छाशक्ति, भय, आशा और निराशाके विषयमें समझा दिया है। अब आप संतानमें शुभ संकल्प, दया, प्रेम और सौजन्य भाव उत्पन्न करनेके उपाय वर्णन करें।

सु०—अच्छा। शुभ संकल्पके विषयम पहिले कहता हूं, सुनो।

"स्नेह, दया, प्रीति और प्रेम आदि शुभ संकल्पके ही एक प्रकारके अंग हैं अथवा शुभ संकल्पकी भिन २ अवस्थाओंके नाम हैं। संतानमें स्नेह, दीन-दुःखियोंपर दया, संबंधियोंसे प्रीति, और ईश्वरमें प्रेम यह अवस्था और संबंध-भेदसे शुभ संकल्पके ही नामान्तर हैं। यदि शिक्षाके साथ २ शुभ संकल्पकी शिक्षा न दी जावे तो तुम्हारा समस्त प्रयत्न व्यर्थ है; क्योंकि शुभ संकल्पके बिना शुष्क और कठोर जीवन आशा उत्पन्न नहीं कर सकता। आशाहीन पुरुषमें सत्साहस नहीं उत्पन्न होता। उत्साहसे रहित मनुष्य प्रतिज्ञारहित हो संसारमें उन्नतिके शिखरपर नहीं जा सकता। वर्षाके विना जैसे शस्य प्रफुल्लित नहीं होता वैसे ही शुभ संकल्प बिना मनुष्यकी उन्नति प्रफुल्लित नहीं होती।

स०—मेरे विचारमें शुभ संकल्पकी एक और अवस्था भी है।

वह यह है कि शुभ संकल्पकी आसक्तिसे मनुष्यकी सब उन्नतियां रुक जाती हैं और मनुष्यको परम हानि पहुंचती है।

सु०—हां ठीक है। यदि मनुष्य शुभ संकल्पकी आसक्तिमें ही दत्तचित्त रहे तो लौकिक उन्नतिसे नितान्त रुक जाता है।

स०—यदि किसी बालकके हृदयमें दुखियोंके दुःख दूर करनेका विचार, दरिद्रियोंपर दया और उनके क्लेश-मोचनकी पूर्ण इच्छा, सब जीवोंपर दया करनेका स्वभाव, और ईश्वरमें भक्ति और श्रद्धाका भाव उत्पन्न करना हो तो उसका उपाय क्या है?

सु०—इसका एक बड़ा सुगम उपाय है।

स०—वह बतलाइये न।

सु०—मनुष्यमात्रको उचित है कि जिसको वह अपनेसे अधिक ज्ञानवान् और धर्म्मात्मा समझे उसपर श्रद्धा और भक्ति दिखलावे, इससे बच्चे स्वयं यह सीख जावेंगे। जब कोई वृद्ध घरमें आवें तो उनको झुककर प्रणाम करे, इससे बच्चे समझ लेगें कि वृद्ध पूजनीय हैं। यह समझकर वह भी प्रणाम करना स्वयं सीख जायेंगे। और जब वह वृद्ध प्रसन्न मन हो आशीर्वाद देंगे तो बच्चेके हृदयमें स्नेह और प्रीति उत्पन्न होगी।

उस दिन जब तुम्हारे पिता आये थे तो इसी प्रकार प्रणामादिके अनन्तर जब अपने पोतेको पुरानी कहानियोंसे सम्बन्धके गुण वर्णन किये थे जिससे बच्चेके हृदयमें उनकी महत्ताका बीज बोया गया था और उनमें बच्चेकी श्रद्धा और भक्ति भाव

उत्पन्न कर दिया था, यह देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। शुभ संकल्पकी ही यह एक दशा है।

स०—इस शुभ संकल्पकी पूर्ण रूपसे रक्षा करना बड़ा कठिन है। एक दिन मैं मच्छी कूट रही थी। बालक दौड़ २ मेरे पास आया और कहने लगा, "माताजी! बिल्लीको मारना पाप है, कुत्तेको मारना पाप है, क्या मच्छीके मारनेका पाप नहीं?" मैं इसका क्या उत्तर देती, अन्तमें मैंने सोचकर कहा कि, "हां पाप है।" तो उसने कहा "फिर आप इसे क्यों मारती हैं?" इसका उत्तर मैं कुछ न दे सकी।

सु०—इस प्रकारके कई छोटे बड़े विषय हैं जिनके उपदेश देने कठिन हैं; क्योंकि हम स्वयं चरित्रवान नहीं हैं। कई एक ऐसे पुरुष भी हैं कि जिन्होंने बाल्यावस्थामें जीवोंपर दया करनी सीखी है। वह सारा दिन एक बिल्लीको सुखी रखनेके लिये गंवा देते हैं। एक तोतेकी मृत्युसे महा-शोकमें पड़े हुये मालूम देते हैं और उसकी मृत्युको अपने प्रिय बन्धुकी मृत्युसे कम नहीं समझते। सत्य है घरके पालतू पशु-पक्षियोंको बच्चों और सम्बन्धियोंका सा प्रेम हो जाता है।

स०—आपने ठीक कहा। यह मैंने भी देखा है कि एक विधवा स्त्री सारा दिन बिल्लीकी सेवामें लगी रहती थी। बचपनमें उसे जीवोंपर दया करनेकी शिक्षा मिली थी।

सु०—मेरा विश्वास है कि यदि यह शुभ संकल्प भाई-बहिनोंमें, माता-पितामें, अपने समस्त परिवारमें, अपने नगर

और देशमें उत्पन्न हो तो बहुत कल्याणकारी है। मनुष्योंमें उदारतासे भक्तिभाव स्थापन करना लाभदायक है। पहले यह शुभ संकल्प प्रेमके आकारमें परिवर्त्तन होता है और प्रेम चींटीसे लेकर ईश्वरतकमें होना चाहिये। शुभ संकल्प दूसरेके लिये करना ही सच्ची उन्नतिका उच्चतम उपाय है और कोई उपाय नहीं।

दसवां परिच्छेद ।

सरलाने सुबोधचन्द्रजीसे जो कुछ शिशु-शिक्षाके सम्बन्धमें सुना और समझा था, ठीक उसपर आचरण भी करती थी और तदनुसार निज सन्तानको शिक्षा दे उनको बड़ी अवस्थामें कल्याण-साधन योग्य बना लिया था। बचपनमें जो अवगुण बच्चोंमें आ जाते हैं, उनसे अपनी सन्तानको इसने सुरक्षित कर लिया था।

सरलाकी पुत्री भी अब इस योग्य हो गई थी, कि कभी २ अपने भाईसे लड़ाई-झगड़ा करने लग जाती थी, बल्कि भाईसे मार पीट भी करने लग जाती थी। परन्तु सरलाका पुत्र अपनी छोटी बहिनको मारता नहीं था। हां, जब बड़ा दुःखी होता तो मातासे आकर कह देता। सरला दोनोंकी लड़ाईकी बात सुनती और जो कुछ उनको कहती वह वैसे ही मान लेते। कई बार छोटी बहिन जो अभी बेसमझ थी भाईको बहुत क्लेश देती थी, परन्तु सरला यह देख उसका यथोचित उपाय कर देती थी। सार यह है कि सरला माताके पूर्ण धर्म्मको पाल रही थी।

एक दिन दैवात् लड़की खेलती २ छतसे नीचे गिर पड़ी और उसे बहुत चोट लगी। एक स्थानपर ईंटके एक कोनेकी चोटसे उसे रुधिर भी बहने लगा। उस समय भाई-बहिन ही खेल रहे थे। बहिनको गिरा देख बालक झट उसके पास पहुंचा और

उसे रक्तसे लथ-पत देख, उसने बड़े जोरसे रोकर मांको बुलाया—"बहिन गिर गई है, इसे रुधिर बह रहा है।" सुबोधचन्द्र घरमें बैठे लिख-पढ़ रहे थे। बच्चेके रोनेको सुन झट बाहर आये, उन्होंने देखा कि कन्या गिर पड़ी है और पुत्र उसके पास खड़ा चिल्ला रहा है। सरला रसोई बना रही थी,उसे कुछ पता न लगा। सुबोधचन्द्रजीने उसे पुकारा तो वह झट बाहर दौड़ी आई। उसे मालूम हुआ, तो उसने घबड़ाकर लड़कीको गोदमें उठा लिया। सुबोधचन्द्रजीने जल लाकर उसकी चोटको धो डाला, और पूछा—"बेटी कहांसे गिरी है? क्या तुमको भाईने गिराया है?" उसने टूटे फूटे शब्दोंमें रोते रोते कहा कि, नहीं मैं अपने आप गिरी हूं।"

इतनेमें क्या देखते हैं कि बालक भागता हुआ और हांफता हांफता हाथमें गेंदेके फूलोंकी पत्तियें लेकर वहां आ पहुंचा, और कहने लगा, "माताजी! यह पत्तियें इसपर बांध दो, इससे रुधिर बहना बंद हो जायगा।"

यह सुन दोनों ही चकित हो उसके मुखकी ओर देखने लगे। सरलाने घबराकर कहा कि आप लड़कीको भीतर ले चलें, और पुत्रसे कहा कि "तुम भीतर जाकर बहिनके लिये बिछावन करो।" बालकने झट बिछौना बिछाकर आकर कहा कि बिछौना बिछा दिया। सरलाने ले जाकर कन्याको उसपर लिटा दिया और उसके लिए दवाई तय्यार करने लगी। थोड़े कालमें रुधिरका आना बन्द हो गया और कन्या सो गई।

सरलाने एक दिन चोटपर गेंदेके फूलकी पत्तियें बांधी थीं जिसको बच्चेने देखा था। पर आश्चर्य्य तो यह है कि इतनी घबराहटके समय इस बच्चेको यह याद कैसे रहा! माता-पिताको यह विदित ही नहीं था, कि बच्चा औषधि लेने गया है।

जब कन्याको कुछ आराम आया तो माताने बालकको कुछ मिठाई इनामके तौरपर दी, जिसे आनन्दसे उसने खाया। पिताने पूछा—"बेटा! यह घावकी दवाई तुमने किससे सीखी थी?" बालकने कहा कि "मेरे सामने माताने तो सुरेशको, जब वह गिरा था और उसे रुधिर बहता था, उसपर यही पत्तियें बांधी थीं।" यह सुन पिताने प्रसन्न हो पुत्रका मुख बड़े स्नेहसे चूमा।

इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत हो जानेपर फिर एक दिन सरलाने सुबोधचन्द्रजीसे कहा—"स्वामिन्! आपकी सिखाई शिशु-शिक्षाके अनुसार चलनेसे यह बच्चे मनुष्यत्व प्राप्त करनेके योग्य तो हो गये हैं, यह ईश्वरकी हमपर बड़ी कृपा हुई है। अब आप फिर शुभ संकल्पके विषयमें यदि और कुछ बतलाना उचित समझते हैं तो बतलाइये।

सु०—शुभ संकल्प भिन्न भिन्न रूपोंमें क्या २ काम करता है और उससे क्या २ लाभ होते हैं यह तो मैं तुमको उस दिन बतला ही चुका हूं। अब तुम यह समझो कि इसके साथ मनुष्यका धैर्य्यवान् होना परम आवश्यक है। शुभ संकल्पके होते हुये भी यदि चञ्चलता होगी तो कई बार मनुष्यको क्लेश सहन करने पड़ते हैं। इसलिये प्रेम, उत्साह और आशा-वृद्धिके साथ ही

साथ शान्त भाव, स्थिर चित्त और सर्वदा धीरताका होना भी परम आवश्यक है। चित्तकी चञ्चलता मनुष्यके अनेक गुणोंका नाश कर देती है। धीर और शान्त प्रकृति मनुष्य पत्तोंकी कुटियामें निर्धनोंके घर उत्पन्न होकर भी संसारमें बड़े २ उच्च पद प्राप्त कर लेते हैं।

स०—एक दो उदाहरण देकर तो समझा दें।

सु०—तुमने रिचर्ड आर्कराइटका नाम सुना है। यह एक निर्धन नाईके पुत्र थे और नाईका काम कर यह भी जीवन निर्वाह करते थे। परन्तु सदा इसी विचारमें रहते थे कि किस प्रकार मैं कुछ धन कमा सकूं। पहिले इन्होंने विचारा कि सब एक पैनी क्षौरका लेते हैं। उन्होंने आध पाईका विज्ञापन दे दिया; जिससे उनकी आमदनी बहुत बढ़ गई। धीरे धीरे उन्होंने थोड़ा थोड़ा व्यापार भी करना आरम्भ कर दिया, जिससे उनके पास अच्छा धन हो गया और फिर उन्होंने अपना विवाह भी कर लिया। यद्यपि यह बड़े विद्वान् न थे परन्तु इनकी प्रकृति आलसी न थी।

उनको कई प्रकारके विचार उत्पन्न होते रहते थे। इसी विचार-स्वभावसे उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि सूत कातनेकी यदि कोई कला हो तो ठीक है; क्योंकि आजकलके प्रबन्धसे वस्त्रोंकी आवश्यकता पूर्णरूपसे पूरी नहीं हो सकती।

इसी विचारमें उन्होंने मशीनका निर्म्माण करना आरम्भ किया, और अपना समस्त धन इसीमें लगा दिया। यहांतक कि खान-पानका भी इनको क्लेश होने लगा। तब आकर इनकी

स्त्रीने मशीनके पुर्जे जिसे इन्होंने बड़े यत्नसे निर्माण किये थे तोड़ फोड़कर फेंक दिये ।

जब रिचर्ड महाशयने यह देखा तो इनको बड़ा दुःख हुआ और स्त्रीपर इन्होंने बड़ा क्रोध किया । यहांतक कि उनकी स्त्री अपने मायके चली गयी । यह अकेले रह गये । परन्तु इन्होंने अपनी लगनको पूरा करनेके लिये फिर यत्न आरम्भ कर दिया। अन्तमें यह सफलता पा गये और सूत कातनेकी कल निर्म्माण कर ली ।

फिर क्या था किसी सौदागरने तीन करोड़ रुपयेमें उसे खरीद लिया और यह उच्च कोटिके धनी बन गये और सरकारसे इन्हें स्टारकी पदवी मिल गई ।

सरला ! यह तुमने समझा कि इनकी सफलता एक मात्र इनके शान्त भावसे शारीरिक क्लेश सहन करनेसे हुई थी । यह तुम निश्चय समझो कि जो आशा-पूर्त्तिके लिये सांसारिक क्लेश सहन कर शान्त स्वभावसे प्रयत्नवान् रहता है वह अपनी कामनाको अवश्य पूर्ण कर लेता है ।

स०—यह तो समझ गई कि जो मनुष्य सहनशील होते हैं वही अपने कार्य्यमें सफलता पाते हैं । आपने इस विषयका उदाहरण मिस्टर रिचार्ड लन्दन-निवासीका दिया है । भारत-निवासी किसी महापुरुषका भी दृष्टान्त दें ।

सु०—भारतवर्षमें तो जितनी सहनशीलताके उदाहरण मिलते हैं उनके वर्णनकी क्या आवश्यकता है? तुमको याद नहीं

कि चाणक्य महर्षि जिनकी चाणक्यनीति पुस्तक आजतक जगद्विख्यात है, जिसको तुमने भी पढ़ा है, एक निर्धन ब्राह्मण थे। इन्होंने पुरुवंशके राजाको गद्दीसे उतार उसके सौतेले पुत्रको जोकि राज्यका अधिकारी भी नहीं था राज्यसिंहासन दिला दिया था। और अन्तमें यह भारतवर्षके सुप्रसिद्ध राजाके मंत्री बने थे। क्या इन्होंने अपनी शिखाको खोलकर यह प्रतिज्ञा नहीं की थी कि जबतक······फिर मैं सिंहासनपर न बैठा लूं और अपने शत्रुओंपर विजय न पा लूं मैं अपनी शिखाको नहीं बांधूँगा? पहले इनको भी वनमें रहना पड़ा था और नाना प्रकारके क्लेश सहन करने पड़े थे।

कौरव पांडवोंमें घोर युद्ध होनेसे पूर्व महाराज युधिष्ठिरने न केवल अपने भाइयों सहित वरंच अपनी स्त्री द्रौपदीको साथ ले १२ वर्ष वनके क्लेश और एक वर्ष अज्ञातवासमें दुस्सह क्लेश सहन किये थे। यदि उनमें सहिष्णुता न होती तो वह किस प्रकार इतने क्लेश सहन करते। विश्वामित्रजीने जब वशिष्ठजीके १०० पुत्रोंका वध किया था तो क्या सहिष्णुताके विना ही वशिष्ठजीने अपनी शान्तिका मोचन कर दिया था।

स०—हां, अब मुझे स्मरण आ गया है। चरितावलीमें अनेक दृष्टान्त इस प्रकारके पाये जाते हैं जिनको मैं पढ़ चुकी हूं।

इस प्रकार जब सरला और सुबोधचन्द्रजी वार्तालाप कर रहे थे तो इनका पुत्र खाटपर लेटा लेटा यह सब सुन रहा था। वह बोल उठा कि "पिताजी! चरितावलीमें रिचार्ड साहिबका वर्णन है?"

सु०—उसमें रिचार्ड का वर्णन नहीं है, उसमें और बहुतसे निर्धन पुरुष जो इस संसारमें बड़े २ धनी हो गये हैं उनका वर्णन है।

बा०—उसमें द्वारकानाथ हाईकोर्टके जजका वृतान्त पढ़ा है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका वर्णन मुझे याद है।

सु०—भारतवर्षमें केवल धन प्राप्त कर ही निर्धन पुरुष बड़े नहीं बने बरंच यहांके निवासी धर्म्म और साधुभावमें भी नाम पा गये। इन्होंने नाना प्रकारके क्लेश सहकर अपने देशकी भलाईके लिये अपने शरीरतक न्योछावर कर दिये हैं।

च्यवन ऋषिने अपने शरीरकी अस्थियें निकालकर इन्द्रको दे दी थीं जिससे इन्द्रने राक्षसोंका वध कर सारे जगतको सुखी कर दिया था। आहा! यह कैसी सहिष्णुता है!

स०—आपने एक दिन मुझे श्यामाचरण सरकारका नाम बतलाया था। यह भी एक अतीव निर्धन पुरुष थे। इन्होंने निर्धन होकर भी कितनी विद्या प्राप्त की थी!

सु०—हां,इनकी बनाई हुई "हिन्दू दाय-विभाग" पर आजतक सरकारी न्यायालयोंमें मुकद्दमे फैसल किये जाते हैं।

बा०—पिताजी! निर्धन पुरुष इस प्रकारकी उन्नति किस तरह कर लेते हैं मुझे बतलाइये। मैं भी उसी प्रकार करूंगा। क्या जिस प्रकार मैं मन लगाकर पढ़ता हूं इसी प्रकार पढ़नेसे सब उन्नत्ति करते हैं?

सु०—जिस प्रकार मैंने तुमको शिक्षा दी है उसी प्रकार

पढ़नेसे तुम भी उन्नति प्राप्त कर लोगे। इन्हीं गुणोंसे जगतमें लोग महापुरुष बनते हैं। यही गुण तुमको पहिले सीखने चाहिये।

बा०—माताजी! किन २ गुणोंसे पुरुष जगद्विख्यात होता है वह आप भी बतला दें।

स०—(१) बड़े कष्ट उठाकर परिश्रमसे लिखना-पढ़ना सीखनेसे।

(२) सरल चित्त और नम्र होनेसे।

(३) सदा सत्य बोलने और सत्यपर चलनेसे।

(४) आलसमें पड़कर एक क्षणभी व्यर्थ न गंवानेसे, उद्यमसे, सदैव कुछ न कुछ उन्नतिके लिये यत्न करते रहनेसे और अच्छे काममें लगे रहनेसे।

इन्हीं गुणोंसे मनुष्य संसारमें मनुष्यत्व लाभ कर सकता है और जगतमें नाम पा सकता है।

बा०—पिताजी! इसी प्रकारके और भी उदाहरण बतलाये। यह सुनकर मेरा मन बड़ा प्रसन्न होता है।

सु०—(सरलाकी ओर देखकर) तुमने रामनाथसेन कविराजका नाम सुना होगा।

स०—हां, उन्होंने कई निर्धन बच्चोंको लिखना-पढ़ना सिखाया है और सहस्रों निर्धन रोगियोंका धर्म्मार्थ इलाज किया है। वे बड़े सज्जन पुरुष हैं।

सु०—केवल इतना ही नहीं उनका बाल्यावस्थाका जीवन अतीव आश्चर्य्यजनक है।

बा०—पिताजी! बाल्यावस्थामें उन्होंने क्या किया था कहिये न ।

सु०—छोटी आयुमें ही इनके माता-पिता मर गये थे। इनके पास खानेतकको कुछ न था, इसीलिये जब यह घर छोड़ नानाके घर जा रहे थे, तो इनके पास रास्तेमें रोटी खानेको न थी। इन दीनने मार्गके किसी किसानसे खानेको मांगा। उसने इन्हें २ बैंगन दिये। वही खाकर इन्होंने अपनी क्षुधा निवारण की।

स०—भूखको दूर करनेके लिये मांगकर बैंगन खानेवालेने इतना धन, ऐश्वर्य्य और नाम पाया था?

सु०—जितने महापुरुष हुये हैं वे प्रायः ऐसे ही निर्धन हुये हैं। इसके आगेका वृत्तान्त इससे भी अधिक आश्चर्य्यजनक है। जब यह नवद्वीपमें संस्कृत पढ़ते थे, तेलके न मिलनेसे रातको पढ़ न सकते थे; तब इन्होंने क्या काम आरम्भ किया कि जब प्रातः स्नान करनेके लिये जाते, तो पेड़ों सूखे पत्ते इकट्ठे कर लाते और रात्रिको धीरे २ जलाकर उसके प्रकाशसे पढ़ते थे। इस प्रकार विद्या पाकर जब यह पूर्ण विद्वान हुये तो अपनी कमाई-का बहुतसा भाग निर्धन बालकोंको पढ़ाने और गरीब रोगियोंके इलाजमें व्यय करते रहे। इससे सहस्रों मनुष्योंको इन्होंने योग्य बना दिया और उन्होंने अपने जीवनका यही उद्देश बना लिया।

बा०—इस प्रकार क्लेश उठाकर यदि लोग योग्य बनते हैं तो मैं भी यथाशक्ति प्रयत्न करके विद्या पढ़ूंगा।

सु०—हां बेटा, तुमको परिश्रम करना चाहिये। अब सोचो

कि जिनको पढ़नेका सब प्रकारका सामान प्राप्त हो और वह परिश्रम न करें तो कितने अभागे हैं ।

स०—आपने ठीक कहा है, छोटे आदमी ही बड़े बननेके लिये यत्न करते हैं और ईश्वर उनपर कृपा करते हैं ।

बा०—अच्छा पिताजी ! अब देखियेगा मैं किस प्रकार परिश्रमसे पढ़ूंगा ।

ग्यारहवां परिच्छेद ।

जैसे २ यह दोनों बच्चे बड़े होते गये तैसे तैसे इन दोनों बच्चों—बहिन और भाईमें—प्रेम बढ़ता गया ।

जितना कोई किसीसे प्रेम करता है दूसरा भी उससे उतना ही स्नेह करता है । इन दोनोंमें इतना प्रेम बढ़ गया कि इनके शरीर दो थे परन्तु प्राण एक हो गये थे ।

एक दिन सुबोधचन्द्रजीको किसी सम्बन्धीके यहां उत्सवके समय शिवपुरमें जाना पड़ा । यह अपने पुत्रको भी वहां साथ ले गये । विवाह-कार्य्य समाप्त होनेपर जब वह वापस आ रहे थे तो जिस नौकामें यह सवार थे वह डूब गई । पिता-पुत्र दोनों ही गंगाके प्रबल प्रवाहमें बहने लगे । पिताने यथाशक्य पुत्रको बचानेका प्रयत्न किया परन्तु जब वह स्वयं बेसुध हुये तो पुत्रको छोड़ दिया और यह दोनों ही बह गये ।

उधर जब नियत दिन और समयपर सुबोधचन्द्रजी घरमें न पहुंचे तो सरला बहुत घबराई । परन्तु जब रात हो गई तब भी बाबू न आये । अन्तमें सरलाने प्रातःकाल एक सम्बन्धीको शिवपुरमें भेज दिया । शिवपुर पहुंचकर इनको विदित हुआ कि बाबू तो कल ही यहांसे चले गये । गंगा-तटपर पूछनेसे समाचार मिला कि 'कल एक नौका डूब गई है । उसमें एक बाबू और एक बच्चा

उनके संगका डूब गया है। सुना है कि बाबूजीको तो पुलिसके सिपाहियोंने पकड़कर अस्पतालमें पहुंचा दिया है परन्तु बालकका पता नहीं!' यह सुनते ही उसके होश उड़ गये। दौड़ा २ शिवपुरमें पहुंचा और सुबोधजीके जातीय भाइयोंको संग ले वह अस्पतालमें पहुंचा।

बहुत तलाशके पीछे इन दोनोंने एक कमरेमें नितांत बेसुध हुये सुबोधचन्द्रको देखा। इन्होंने बहुत सावधानीसे उन्हें बुलाया, परन्तु उन्हें सुध कहां।

डाक्टरसे आज्ञा ले वह सुबोधको डोलामें डाल घरको चल दिये। इस दशामें स्वामीको देख सरला बेचारी जो पहिलेसे ही खड़ी होकर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी और जिसने कलसे ही अन्न-जल छोड़ दिया था, एकाएक मूर्च्छित हो कटे वृक्षके समान भूमिपर गिर पड़ी। बहुतसे प्रयत्नके अनन्तर जब कुछ सुध्र आई तो धीरज धर स्वामीके इलाज और सेवामें लग गई। दूसरे दिन सुबोधको कुछ सुध आई। अभीतक इस बेचारीको प्राणप्रिय पुत्रकी सुध्रतक न थी, और न सुबोध्र बाबूने बालक-सम्बन्धी समाचार सुनाया था।

जब सुबोधजीको पूर्ण सुध और आरोग्यता प्राप्त हुई तो सरलाने पूछा कि—"महाराज! बालकको आप कहां छोड़ आये हैं।" सुबोधचन्द्रने कहा "कि यदि धीरज धर शांत भावसे सुनो तो मैं तुमको बतलाऊं।" यह सुन वह अतीव अधीर हो कहने लगी "महाराज! शीघ्र बतलाइये।"

सु०—जब मैं बच्चेको लेकर नौकामें सवार हुआ और नौका डूबने लगी तो मैंने बच्चेको बचानेका बड़ा प्रयत्न किया। जब मैं बेसुध हो गया तो वह मुझसे छूट गया। फिर मुझे उसका कुछ पता नहीं कि क्या हुआ।

यह वज्रपातसी खबर सुन सरला बेचारीके प्राण निकलने लगे और फिर मूर्च्छित हो गई। सुबोधचन्द्रजीने ठंढे जलके छींटे मार उसको सुध दिलाई और समझाना आरम्भ किया कि मुझे विश्वास है कि परमात्मा उसकी अवश्य रक्षा करेंगे। इस प्रकार अधीर होनेसे यह सिद्ध होता है कि हमारा उस मंगलमय भगवान्‌पर विश्वास नहीं। अब उसकी तलाश करनी उचित है।

सुबोधचन्द्रजीने ज्योंही समाचारपत्रको हाथमें लिया एकाएक उनकी दृष्टि इस समाचारपर पड़ीः—

"एक ८ या ९ सालका बच्चा गंगामें डूबता हुआ पुलिसने पकड़ा है। वह अस्पतालमें पड़ा है। जिसका वह बच्चा है वह अस्पतालसे उसे ले जावे।"

यह समाचार पढ़ते ही सुबोध एक दो मित्रोंको साथ ले वहां पहुंचे तो एक कोनेमें अस्थि-अवशेष एक बच्चा देखा। पहिले तो उसे पहिचान भी न सके परन्तु आगे बढ़कर जब ध्यानपूर्वक देखा तो पहचानकर उसे गोदीमें उठाया। बालक अपने पिताको पहचान एकाएक सुधमें आ गया। सुबोधचन्द्रजी उसे उठवाकर घरमें ले आये।

उधर सरलाकी पुत्रीको भ्रातृ-वियोगमें ज्वर हो गया था।

और उसका बहुतेरा इलाज किया जा रहा था परन्तु उसकी बेहोशी और ज्वर दूर नहीं होता था। जब सुबोधचन्द्रजी बालकको लेकर घरमें पहुंचे तो मृतवत् सरलाके शरीरमें प्राण तो आये परन्तु पुत्रकी दशा देख उसे परम क्लेश हुआ। कन्याने जब सुना कि भाई आ गया है तो उसने भी आंखें खोलीं और थोड़े कालमें सचेत हो भाईके गले आ मिली। इसका ज्वर छूट गया।

सरलाने परमात्माके चरणोंमें शुद्ध हृदय और पूर्ण भक्ति भावसे प्रार्थना की कि "हे भक्तवत्सल! आपने ही मुझ अबलाको यह पुत्र-रत्न दिया है, यह आपहीकी दयाका प्रभाव है कि यह ऐसा विचारशील और बुद्धिमान है जिससे मुझे पूर्ण आशा है, कि यह तेरी प्रजाका भक्त और देशका सेवक बन सकेगा। आप इस दासीपर दया करें, इस अपनी संतानकी रक्षा करें।"

इस प्रकार ईश्वरसे प्रार्थना कर बालककी सेवा और इलाज करने लगी। ईश्वरकी कृपा और सरला तथा सुबोधचन्द्रजीके परिश्रमसे थोड़े दिनोंमें बालक स्वस्थ हो गया और माताके समस्त क्लेशोंको दूर कर फिर भाई-बहिन दोनों आंगनमें खेलने लगे।

बारहवां परिच्छेद ।

धीरे २ जब दोनों बच्चे पूर्ववत् आरोग्य हो गये तो पुत्र पूर्ववत् अपने पढ़नेमें लग गया और बहन भी भाईके पास बैठ थोड़ा २ पढ़ने लगी और सरला भी शांत चित्त हो पूर्ववत् गृह-कार्य्य और शिशु-शिक्षाका काम करने लगी। इनकी बीमारोमें जो उसके अपने गलेका हार और हाथोंके कड़े बेचने पड़े थे उसके लिये किंचित् भी खेद इसके मनमें न रहा।

कुछ दिनोंके अनंतर समय पाकर स्वामीसे कहने लगी— "अब आपका पुत्र ९-१० वर्षका हो गया है, अब इसके घरकी शिक्षा समाप्त है। अब इसको किसी पाठशालामें भेजना उचित है। इसमें आपका क्या विचार है?

सु०—"अच्छा, आज सायंकालको बालक और तुमको बुलाकर इस विषयोंपर विचार किया जायेगा; परन्तु यह निश्चय समझो कि जिस इष्टदेव ईश्वरने हमारी इस दो-तीन मासकी आपत्तिको दूर किया है वही यह जानते हैं और वही आगे मंगल करेंगे।" यह सुन सरलाके मुखसे एकाएक ठंढी आह निकली।

सायंकाल आफिससे आ, भोजनादिसे निपट सुबोधजी अपनी स्त्री और पुत्रको बुलाकर पहलेकी भांति वार्तालाप करने लगे।

सु०—पहिले जो कुछ मैं तुमसे शिशु-शिक्षाके विषयमें कह

चुका हूं वह तुमको स्मरण है ? कुछ कहो तो भला देखें तुमको याद भी है या नहीं ।

स०—आपने बहुत कुछ कहा है, आज कृपापूर्वक यह वर्णन करें कि घरके पालतू पशु-पक्षियों तथा दीन-हीन दुःखियोंकी सेवा करनेका भाव बालकोंमें किस प्रकार उत्पन्न किया जा सकता है।

मनुष्य मनुष्योंपर और अन्य जीव-जन्तुओंपर बड़ा अत्याचार करते हैं, जिसका फल यह होता है कि बालक भी उनकी देखा-देखी उनपर निष्ठुर व्यवहार करना सीख जाते हैं। वह क्या उपाय है जिससे बच्चे इस निष्ठुरताको न सीखें पहले यह समझना आवश्यक है ।

बा०—पिताजी ! उस दिन हमारे पड़ोसी बच्चोंने एक पागलको बड़ा सताया था, जिसे देख मुझे तो बड़ा क्लेश हुआ था । मैंने उन बालकोंको ऐसा करनेसे बहुतेरा रोका, परन्तु वह मेरी कब सुनते थे । मुझे तो बड़ी लज्जा आई और मैं तो वहांसे घरको भाग आया ।

स०—(दुःख प्रगट कर)—"मैंने तुमको यही शिक्षा दी थी ? अब मैं तुमको कोई शिक्षा नहीं दूंगी ।

सु०—यह तो आप ही लज्जित और दुःखी हुआ था, इससे तुम इसे कुछ न कहना । बेटा ! देखना तुम फिर ऐसा काम कभी न करना । वह पागल बेचारा तो पहिले ही ईश्वरकी ओरसे अपने कर्म्मका फल पा रहा है और परम दुःखी है । उसको सताना महापाप है ।

काने, गंजे,लूले,लंगड़े या अन्य किसी अंगहीनको देख उसका उपहास करना महा-निन्दनीय कर्म्म है। मनुष्यका धर्म्म है कि उनकी यथायोग्य सेवा करे। कुष्ठीको या जिस दीनके हाथ पांव झड़े हों उसको तो पेट भरनेको अन्न और पहरनेको वस्त्रादि दे उसकी सहायता करनी चाहिये। यही ईश्वरकी आज्ञा है। बेटा! यदि तुम सज्जन बनना चाहते हो तो निष्कपट भावसे दीन-दु:खियोंकी सेवा करनी सीखो।

बा०—(माताकी ओर देखकर) मैंने तो आजतक किसी अङ्गहीन दीन-दु:खियाको नहीं सताया और नहीं सताऊंगा।

सरलाने बड़े प्रेमसे पुत्रका मुख चूमा और कहा—"अच्छा बेटा! अब तुम अपने बिछावनपर सो जाओ।"

सु०—मेरे एक मित्रकी कन्या ६ या ७ मासकी थी। वह दुर्भाग्यवश बीमार हो गई। उसकी बड़ी सेवा और औषधादि करानेसे उसके प्राण तो बच गये, परन्तु उस व्याधिका उसके मस्तिष्कपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि जब वह बड़ी हुई तो वह न तो काम-काज करनेके योग्य और न लिखने-पढ़नेके योग्य रही।

उसकी ऐसी दशा देख उसके बहन-भाई और अन्य सम्बन्धियोंका सब प्रेम-भाव उससे दूर हो गया। और वह और भी अधिक जड़बुद्धि हो गई और सब उसे पागल २ कहने लग गये।

इस कन्याका पिता धर्म्मात्मा सज्जन पुरुष था। जब यह कन्या विवाह योग्य हुई तो सब सम्बन्धियोंकी स[illegible]तिके न होनेपर भी इसने एक योग्य बालकसे उसका विवाह [illegible]र दिया।

विवाह हो जानेके अनन्तर इस कन्याका पागलपन धीरे २ दूर होने लगा और वह घरके काम-काज भली-भांति करने लग गई।

सत्य है, सम्बन्धियोंके दुर्व्यवहारसे भला-चंगा मनुष्य भी पागल हो जाता है और परिवारके सद्व्यवहारसे पागल भी सचेत हो जाते हैं।

स०—आपको स्मरण होगा कि मेरे पिताके घरके निकट एक हरिश्चन्द्र बाबू रहते हैं। वह बड़े भद्र पुरुष हैं। उनका एक पुत्र जन्मान्ध उत्पन्न हुआ था। बहुतसे इलाज बड़े २ डाक्टरों और वैद्योंसे करानेपर भी वह बच्चा आरोग्य न हुआ। घरके लोगोंने जो बर्ताव उससे किया था, उसे सुनकर आप चकित हो जायंगे।

बालकके बड़ा होनेपर उसकी शांतिके लिये सबने बड़ा यत्न किया। माता-पिता और बहिन-भाई घरके सब लोग उसकी सेवकोंके समान आज्ञा-पालन करते थे। जब वह पढ़नेके योग्य हुआ तो उन्होंने इसकी शिक्षाके लिये एक सुयोग्य अध्यापक नियत कर दिया। बालकने अध्यापकसे सुन २ और उपदेशोंसे परम योग्यता प्राप्त कर ली। जब वह पूर्ण योग्य हो गया तो उसके माता-पिताने एक घरमें पाठशाला खोल दी और उसके प्रबन्धका भार इस अन्धे बालकके हाथ दे दिया। बड़ा होकर वह बालक कन्याओंके पढ़ानेके लिये बड़ा विख्यात सुयोग्य अध्यापक बन गया। उसने सैकड़ों कन्याओंको शिक्षा दी, और अपना जीवन यापन आनन्दसे निर्विघ्न करता रहा।

इससे जान पड़ता है कि दूसरोंके लिये अपने सुखोंको न्योछावर कर देनेसे दूसरोंके दुःख मनुष्य दूर कर सकता है।

बा०—पिताजी! उस बालककी आंखें न थीं तो फिर उसने लिखना-पढ़ना किस प्रकार सीख लिया?

पि०—एक मनुष्य पढ़ता जाता था और वह सुनकर कंठ कर लेता था।

बा०—तब तो जो कुछ सुनता होगा, वह उसे खूब याद रहता होगा?

पि०—निस्सन्देह।

बा०—तब मैं भी इसी प्रकार अपने पाठको कंठ कर लिया करूंगा।

पि०—यत्न करनेसे तुम भी कंठ कर लोगे।

स०—सन्तान सत्यवादी किस प्रकार हो सकती है अब आप इसके उपाय वर्णन करें। यह आपका पुत्र यद्यपि सत्यवादी है परन्तु फिर यदि इससे कोई अन्याय कार्य हो जाता है तो अपनी महत्ता स्थापित रहनेके लिये वह उस अन्यायको छिपानेके लिये; मेरा विचार है कि, कुछ न कुछ मिथ्या भाषण करता है। यह बात बच्चोंमें ही नहीं बड़ोंमें भी पाई जाती है। संसारमें रहकर सत्यवादी सत्याचारी होना सहज काम नहीं।

सु०—यह हमारा (माता-पिताका) ही दोष है। मैं पहिले भी कह चुका हूं कि माता-पिताके गुण बचपनमें ही बच्चोंमें अपना प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं। हमारे माता-पिताकी निर्बलता और

उनसे हममें आई हुई कमजोरीसे बालक सत्य भाषण और सत्या-चरण आदि गुणोंको पूर्णरूपसे ग्रहण नहीं कर सकते। जिस घरमें बच्चा लालित-पालित होता है उस घरके—परिवारके सब गुण जैसे सामाजिक गुण-दोष पुरुषमें आते हैं उस बालकमें भी आ जाते हैं। यदि माता-पिता सच्चे सत्यवादी और सत्याचारी हों तो उनकी सन्तानमें भी यह गुण स्वयं प्रविष्ट हो जायें।

स०—उदाहरण देकर यह समझायें; क्योंकि सोदाहरण कथनसे विषय अच्छी तरहसे समझा जाता है।

सु०—भारतवर्षमें पहिले इस बातका बड़ा विचार था। लोग अपना सर्वस्व नाश कर देते थे, भिखारी बनना स्वीकार करते थे, सहस्रों क्लेश सहन करते थे परन्तु सत्यका त्याग नहीं करते थे।

सरला ! तुमको स्मरण होगा कि महाराज धर्मराज युधिष्ठिरने कौरवोंके कितने अत्याचार सहन किये। १२ वर्ष वनके क्लेश सहे परन्तु अपने सत्यका त्याग नहीं किया। जब कौरव पांडवोंका युद्ध आरम्भ हुआ और द्रोणाचार्य कौरवोंकी ओरसे लड़ रहे थे, द्रोणाचार्यको यह वर था कि जब वह हर्ष और शोकका समाचार सुनेंगे तो वह मरेंगे। सबने यह कोशिश की, कि युधिष्ठिर महाराज अपने मुखसे यह कह दें कि अश्वत्थामा मारा गया परन्तु अपनी सेनाके सहस्रों वीरोंको मरता देखकर भी उन्होंने यह स्वीकार न किया, झूठ न बोले। अंतको अश्वत्थामा हाथीको मारकर उनसे यह कहलाया कि "अश्व-त्थामः हतः कुंजरः"। उस समय सेनाने इतनी चालाकी की

कि झट बाजे बजाने आरम्भ किये और 'कुंजरः' यह शब्द द्रोणाचार्यको सुनने न दिया। द्रोणाचार्यकी मृत्यु हुई और पांडव पक्षकी जय हुई।

इसी प्रकार और भी सहस्त्रों सत्यवादी हो चुके हैं, यह तो पिछले समयकी बातें हैं। मेरे देखनेकी बात है, कि शिवकुमार बाबूके पिताका जब देहान्त हुआ तब उन्हें बहुतसा ऋण देना था। ऋण लेनेवालोंने न्यायालयमें अभियोग कर दिये। शिवकुमारको लोगोंने बहुतेरा समझाया कि पुत्र पिताके ऋण देनेका अधिकारी नहीं है, तुम न्यायालयमें ऋण स्वीकार न करो, तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं हो सकता। और यदि तुमने स्वीकार किया तो तुम्हारी सब धरती, घर घाट बिक जायेंगे और तुमको भिखारी बनना पड़ेगा। यह सब ठीक समझकर भी इस सज्जनने एक न मानी। न्यायालयमें ऋण देना मान लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि इसकी सब जायदाद बिक गई और इसके पास खानेतक न रहा और बहुत कालतक इसे भिखारियोंका सा जीवन व्यतीत करना पड़ा। बाल्यावस्थामें इसे यही शिक्षा मिली थी कि "सत्यमेव जयति नानृतम्" यानी सत्यही की जय है, झूठकी नहीं।

स०—ठीक सत्यको इस प्रकार ग्रहण किये बिना मनुष्य जन्म ग्रहण करना सार्थक नहीं हो सकता।

सु०—भारतनिवासियोंमें कैसे २ अवगुण उत्पन्न हो गये हैं। एक पुरुष बाजारसे एक वस्तु क्रय करने जाता है। क्रय वस्तु

जहांसे बहुत ही सस्ती मिले वहांसे ही लेता है। एक पुरुष समझता है कि यह वस्तु एक रुपयेकी है और यह चार आनेको मिलती है, वह ले लेता है। यदि उसे कहे कि यह वस्तु अवश्य चोरीकी होगी तो वह झट कह देता है कि हमको इससे क्या, हमने तो मोल देकर ली है। यदि उसका पुत्र साथ हो तो वह यही समझ लेगा कि, चोरीकी वस्तु लेनेमें कोई दोष नहीं अर्थात् चोरीकी वस्तु खरीद चोरका साहस बढ़ाना पाप नहीं।

इस प्रकारके छोटे २ जीवनके कार्य्योंसे सत्यकी परम हानि होती है और ऐसे २ ही दुष्कर्मोंसे परिवार और सामाजिक उन्नति नष्ट होती है।

गौरीशंकरके घर उसका मित्र ज्ञानचन्द्र आया। उसने गौरी-शंकरके नौकरको बड़ा अच्छा काम करते देखा। विचार उपजा कि यदि यह सेवक मेरे पास आ जाये तो बेहतर है। समय पाकर ज्ञानचन्द्रने नौकरसे पूछा—"तुमको क्या वेतन मिलता है?" उसने उत्तर दिया—"५ रुपये मासिक।" ज्ञान बाबूने कहा—"यदि तुमको ५॥ या ६ रुपये मिल जाये तो आ जाओगे?" उसने कहा "अच्छा, सोचकर कहूंगा।" एक सप्ताहके अनन्तर वह नौकरी छोड़ ज्ञान बाबूके पास आ गया और उन्होंने ६ रुपये मासिकपर उसे रख लिया।

यह देख बालक स्वयं सीख जाता है कि अपने स्वार्थ-साधनके लिये अन्याय करनेमें कोई दोष नहीं।

स०—इससे तो यह सिद्ध होता है माता-पिताको खूब सोच

समझकर न्याय-अन्याय विचारकर चलना चाहिये। विवेक, धर्म्म-बुद्धि, सत्यानुष्ठान और निष्ठाके भावपर चलनेसे सन्तान धर्म्मात्मा बन सकती है।

सु०—हां, हमारे देशमें पहले ऐसा ही होता था परन्तु अब तो लोग जो धर्म्मात्मा और भक्त कहलाते हैं वह एक मात्र अपने नामके लिये बाह्याडम्बर करते हैं। इसीलिये उनका प्रभाव संतान-पर बुरा पड़ता है और आजकलकी सन्तान देशके लिये हानि-कारक ही होती है।

स०—क्या सब लोग एक जैसे हैं? यदि सब ऐसे हों तो यह संसार कैसे टिक सकता है?

सु०—नहीं, सब लोग एकसे कदापि नहीं होते। बहुतसे साधु सज्जन भी हैं परन्तु उनमें भी कई त्रुटियां हैं।

स०—बहुत सज्जन हैं पर उनमें बहुत त्रुटियां हैं इससे आपका क्या अभिप्राय है?

सु०—सज्जन पुरुषसे यदि कोई दोष हो जाये तो उसको झट समझकर उस दोषको दूर करनेका वे प्रयत्न करते हैं, परन्तु ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं। बहुतसे लोग ऐसे हैं कि वह लोगोंकी पूछ-ताछसे बचना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। इनसे यदि कोई अन्याय कार्य्य हो जाय तो अपना पक्ष समर्थन करनेका यत्न करते हैं।

स०—इसमें दोष ही क्या है यदि मनुष्य अपनेको निर्दोषी नियत करनेके लिये विचार करे?

सु०—कई उपाय करके अपने आपको निर्दोष सिद्ध करना, धर्म्म-भावको त्याग केवल तर्क और युक्तिसे अपने आपको निर्दोषी बनाना महा पाप है। इसीलिये मेरा विचार है कि सत्य, न्याय और पवित्रताके आश्रय परमेश्वरपर सन्तानका विश्वास स्थापन करनेके लिये माता-पिताको स्वयं धर्म्मात्मा, न्यायी और सदाचारी होना अतीव आवश्यक है।

सन्तानको सत्य शिक्षा देनेका उपाय पहिले मैं तुमको दृष्टान्तों द्वारा समझा चुका हूं और जो इसके उपाय हैं मैं कहता हूं, सुनो। बच्चे कई वार कई अन्यायके काम कर देते हैं। अन्याय करके क्या स्त्री क्या पुरुष, क्या बूढ़ा और क्या युवा, दण्डसे बचनेके लिये उसे स्वीकार नहीं करते। इससे बच्चोंको बचानेका सहज उपाय यह है कि पहिले बच्चोंको यह पूर्ण विश्वास होना चाहिये, कि दण्ड देनेवाला उसका सच्चा हितकारी है, उससे प्रेम रखता है, वह उसपर दया करता है। तभी दण्ड देना सफल होता है। और घोर दण्ड पाकर भी उस दण्ड देनेवालेमें बालककी जो श्रद्धा है वह बनी रहे।

स० – मुझे जान पड़ता है कि इसके साथ एक उपाय और भी करना चाहिये। वह यह कि यदि बच्चेसे एक वार कोई अन्याय काम हो जाये तब ऐसा पहिले प्रयत्न करना उचित है कि वह उस दोषको स्वीकार कर ले। दोष स्वीकार करनेसे ही साहस प्रकट होता है और अस्वीकार करनेसे भीरुता बढ़ती है। साहस और भीरुतासे कई लाभ और हानियें उत्पन्न होती हैं।

अच्छा, यदि बालक वार २ अनुचित काम कर छिपाता रहे तो उसका क्या इलाज करना चाहिये ?

सु०—मेरे एक सम्बन्धीने कहा था कि "मेरी ११-१२ वर्षकी कन्याको झूठ बोलनेका बड़ा भारी स्वभाव पड़ गया था। और वह उसमें इतना दृढ़ हो गया था जो उससे दूर होना असम्भव हो गया था। जब मैंने उसका विवाह कर दिया तो वहां भी वह ऐसा करने लगी। जहां कोई वस्तु उसे धरी मिले वह झट उसे छिपा ले। उस घरके बच्चोंमें इतना झूठ बोलनेका अभ्यास न था। परन्तु अब उनमें भी यह दोष बढ़ने लगा। इस कन्याकी तो यह दशा थी कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

घरके स्वामीको यह देख बड़ा खेद हुआ। उसने पुत्र बधू-को एकान्तमें ले जाकर समझाया और पूछा कि यह काम तुमने किये हैं ? वह बेचारी कहना तो चाहती थी परन्तु लज्जाके मारे यही कहा, "नहीं बाबाजी ! मैंने तो नहीं किया।" जब बाबाने फिर समझाया तो कहने लगी कि "मैं क्या करूं, पितृगृहमें मुझे यही अभ्यास पड़ा है, अब छूटना कठिन है।" इतना कहकर वह रुदन करने लगी। यह सुन गृहपतिको बड़ा दुःख हुआ।

सत्य है ऐसी २ गलतियोंसे कई प्रकारके महान क्लेश बच्चों-को भोगने पड़ते हैं।

स०—दया और सहानुभूतिके अभावसे बहुतसे बच्चोंका जीवन बिगड़ जाता है। बाल्यावस्थामें बच्चेमें चाहे जितनी बुराइयां पड़ जायें परन्तु माता-पिताके उन बुराइयोंके दूर करने-का प्रयत्न करनेसे बच्चे बहुत कुछ सुधर जाते हैं।

तेरहवां परिच्छेद ।

बालकको स्कूलमें प्रविष्ट करानेसे पूर्व उसे घरमें इतनी शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिये जिससे बच्चा स्कूलकी पांचवीं या चौथी श्रेणीके साथ चलनेकी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ले। तब उसको नगरकी किसी उत्तम पाठशालामें प्रविष्ट कराना चाहिये। ११ वर्षकी आयुतक बच्चेमें सत्यपरायणता, मनुष्यमात्र एवं समस्त प्राणियोंपर दया और परोपकार तथा धर्म्म-जीवन-निर्वाहकी शिक्षाके बीज बो देने चाहिये।

सबसे पूर्व बच्चोंको माता-पिता आदि गुरुजनों और शिक्षक-की भक्ति करनी सिखानी चाहिये। वह विनम्र शान्त स्वभाव हो अन्यायसे घृणा करे और बुरे बालकोंसे दूर रहे ऐसी २ शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिये।

सरला और सुबोधचन्द्रजीके पुत्रमें जब यह सब गुण पूर्ण-रूपसे दृढ़ हो गये तो उन्होंने निज पुत्रको एक उत्तम पाठशालामें प्रविष्ट करा दिया।

पाठशालामें प्रविष्ट हो सुबोधके पुत्रमें यह गुण देख सब अध्यापक उससे विशेष प्रेम करने लगे। यह देख कई दुष्ट बालक इससे द्वेष करने लगे। उन्होंने परस्पर संकेत कर निश्चय किया, कि इसकी गत बनायें। एक दिन छुट्टी हो जानेपर तीन

चार बालकोंने इससे कहा, "आज हमारे साथ चलो। हम तुमको दही चावल खिलायेंगे।" बालकने उत्तर दिया, "आप मेरे पिताजीसे कहें, यदि वह आज्ञा देंगे तो मैं आपके साथ जा सकता हूं।" उन्होंने कहा, "यदि बिना पूछे हमारे साथ चलोगे तो क्या दोष है?" उसने कहा, "यह तो मैं नहीं जानता कि तुम्हारे साथ जानेसे हानि होगी या लाभ पर मैं पिताजीकी आज्ञा बिना नहीं जाऊंगा। मैं तो पिताजीके साथ ही जाता हूं।" उन्होंने कहा कि "पिता और अन्य बंधुओंके साथ जाकर खुले मनसे तो तुम बात भी नहीं कर सकते, हमारे साथ चलनेसे किसीका डर नहीं। हम तुमको कई नई २ कहानियां सुनायेंगे और कई नये २ खेल दिखायेंगे।" इसका सुकुमार हृदय तो पिघल आया परन्तु फिर भी उसने कहा—"नहीं भाई! मैं तो बिना पूछे नहीं जाऊंगा। आज मैं उनसे पूछूंगा यदि उन्होंने आज्ञा दी तो कल मैं आपके साथ चलूंगा।" उन्होंने कहा, "अच्छा, कल तो तुमको हमारे साथ खेलनेके लिये जरूर जाना पड़ेगा।" सुकुमारने कहा, "अच्छा।"

दूसरे दिन बालकने कहा, "न भाई मैं आपके साथ नहीं जाऊंगा। मुझे घरसे आज्ञा नहीं मिली। आप मुझसे अनुरोध न करें। मैं पाठशालामें ही आपके साथ खेलूंगा।" यह सुनकर उन्होंने कहा—"तुम एक दिन हमारे साथ चलो, यदि तुमको आनन्द न आयेगा तो फिर न जाना।" सुकुमारने कहा, "अच्छा शनिवारको थोड़ेकालके लिये चलूंगा।" सुकुमार मनही मन सोचता रहा

कि माताकी बिना आज्ञा जाना उचित नहीं; परंतु यह बड़ा आग्रह करते हैं और कहते हैं कि नये खेल और विचित्र कथायें सुनायेंगे। क्या करूं समझमें नहीं आता। अन्तमें शनिवारके दिन वह डरता २ उनके साथ तो चला, परन्तु फिर कहने लगा, "भाई, मुझे जाने दो, मुझे पिताजी मारेंगे, मैं नहीं जाता।" परन्तु उन लड़कोंने इसे जाने न दिया। बहुतसे बालकोंने उसे घेर लिया और बलात्कार उसे ले चले। इस बेचारेने बहुतेरी कोशिश की परंतु यह अकेला था और वह बहुत थे।

अन्तमें वह सुकुमारको एक टूटेफूटे मकानमें घेरकर ले गये। यह सब सदा वहीं जाकर तमाकू पीते थे। उनमेंसे एक बालक तमाकू तयार करने लगा, दूसरा उसे गाली निकालकर बुरे शब्दोंसे कहने लगा, "देख बुद्धू! यदि सुकुमार तमाकू न पियेगा तो नालपेरका पानी इसको पिलाये विना नहीं छोड़ेंगे।"

सुकुमार उनकी ऐसी अश्लील भाषा सुन बड़ा घबराया। जब इन्होंने उसे हुक्का पीनेको कहा और जबरदस्ती की तो सुकुमार बेचारा चिल्लाने लगा और उसको अनुभव हो गया कि दुष्टसंगतिका यह फल है।

यह सोच जब यह वहांसे भागने लगा तो साथियोंने इसको पकड़ लिया। इसने हाथ छुड़ानेकी बड़ी कोशिश की परन्तु उन दुष्ट बालकोंने इसे घेर लिया और जाने न दिया तथा इसको बहुत कुछ मारना भी आरम्भ कर दिया। तब यह बेचारा आर्त्तनादसे रोने लगा।

इसके रुदनकी ध्वनि बाहरतक सुनाई दे रही थी। इतनेमें एक भद्र पुरुष उधरसे जा रहा था। उसने जब इस आर्तनादको सुना तो उसे दया आई। वह इधर आया, परन्तु देखा कि द्वार अन्दरसे बन्द है। पहिले तो यह वापस लौट चला परन्तु एक टूटी दीवार देख अन्दर चला गया। जब उन दुष्ट बालकोंने देखा तो उन्होंने समझा कि बाहर बहुतसे लोग होंगे, वह हमें मारेंगे। यह सोच, वह सुकुमारको छोड़ दूसरे द्वारसे भाग गये।

जब वह भद्र पुरुष भीतर गये तो उन्हें विदित हो गया कि इस सुशील बालकको दुष्ट बच्चोंने मारा है। यह देख उन्होंने सुकुमारसे पिताका नाम और घरका पता पूछकर अपने साथ उसे ले आये, यद्यपि वहांसे घर बहुत दूर था परन्तु उन्होंने सुकुमारको घर पहुंचा दिया। यह सुबोधचन्द्रको सब हाल सुनाना चाहते थे परन्तु वह घरमें न थे।

बालक जब घरमें गया तो सरला इसे मिट्टीमें लिथड़-पिथड़ और वस्त्र फटे देख पूछने लगी, "बेटा! यह क्या हुआ?" सुकुमार उच्च स्वरसे रोने लगा। सुबोधकी कन्या भाईके रोनेके शब्दको सुन भागी आई और कहने लगी, "भाई! क्या हुआ। मां, भाईको क्या हुआ।" परन्तु यह कुछ बोल नहीं सकता था और रो रहा था। फिर माताने कहा—"बेटा! बतलाओ तो सही क्या हुआ है?"

सुकुमार रोते २ कहने लगा—"स्कूलसे चार-पांच बालक मुझको जबरदस्ती बाहर ले गये थे। उन्होंने मेरी बुरी गत

की है। एक बाबूजी मुझे घर छोड़ गये हैं। क्या जाने वह अभी बाहर ही खड़े होंगे।"

सु०—"बेटा! तुम उनके घरको जानते हो?" बालक बोला, "नहीं, मैं उनको नहीं जानता।"

स०—"बाहर जाकर देखो, यदि वह हैं तो उनको भीतर ले आओ। यदि वह न आवें तो उनका पता पूछना।" सुकुमार बाहर आया और बाबूजीको खड़ा देख उनसे कहने लगा, "महाराज! पिताजी घरपर नहीं हैं, आप भीतर आइये।"

बाबू—नहीं मैं थका हुआ हूं, मैं अब चलता हूं। मेरे घरका पता यह है। तुम पिताजीको ही मेरे पास भेज देना।

सुकुमार—आप भीतर आइये, मैं माताजीसे जल ला दूंगा। आप हाथ मुख धो लें और जलपान करें, इतनेमें पिताजी भी आ जायेंगे।

बाबू—नहीं, यह मेरा पता है। मैं जाता हूं।

उनका पता लेकर बालक भीतर आया तो माताने पहिले पुत्रको एक डोज आर्निकाका पिला दिया, और फिर उसीका लोशन बनाकर बच्चेकी चोटोंपर लेप कर दिया। इतनेमें सुबोध-चन्द्र भी आ गये।

सुबोधचन्द्रजीको खिन्नचित्त देख किसीको साहस न पड़ा कि उनसे कुछ कह सकें। सुबोधजी झट दफ्तरके कपड़े उतार-कर बाहर चले गये। सुकुमार लज्जा और भयसे जड़वत् रहा।

रातको सुबोधने बालकका दुष्ट बालकोंके हाथ आनेका सारा

वृत्तांत कहा जिसे सुन सरलाको अतीव क्लेश हुआ, और रोते रोते कहने लगी कि हमने इतने परिश्रमसे इसका लालन-पालन किया है। आज इसकी यह दशा हुई है जिसे सुनकर मेरे दम निकल रहे हैं।

सुबोधचन्द्र—यह आप तो नहीं गया। वे इसे जबरदस्ती ले गये थे, इसका कुछ दोष नहीं।

स०—एक सप्ताहसे दुष्ट बालक इसे ले जानेका यत्न कर रहे थे। इसने आपसे या मुझसे नहीं कहा। यदि यह उनको आशा न बंधाता तो वह इसे कैसे ले जा सकते थे?

सु०—एक सप्ताहसे यह बात चल रही थी और इसने हमसे कुछ नहीं कहा, इसीलिये तुम ठीक कहती हो कि इसका भी दोष है।

इस प्रकारके सोच-विचार और चिन्तामें रातको इन्हें नींद न आई। प्रातः काल उठकर सुबोधने बालकको बुलाया। सुकुमार कांपता २ भयसे इनके निकट तो आया परन्तु भय और लज्जासे उसके मुखसे बात नहीं निकलती थी।

पिताने पूछा कि "कल क्या बात हुई थी।"

सुकुमार—पिताजी पांच छः दिनसे स्कूलके दुष्ट पांच छः बालक मुझको नये खेल और नई कथाओंके प्रलोभन दे रहे थे। मुझसे यह अतीव अन्याय कार्य्य हुआ है कि मैंने आपसे यह न कहा और प्रलोभनमें आकर मैं उनके साथ चला गया, जिसका दंड ईश्वरने मुझे दिया है। आप मुझे क्षमा करें।

सुबोधचन्द्रने यह सुन प्रेमसे उसका मुख-चुंबन किया और कहा कि पुत्र! तुमने सत्य २ कह दिया है, इसलिये मैं तुमको क्षमा करता हूं। आगेके लिये सावधान रहना। जो बच्चे अपने माता-पितासे अपना भाव गोपन रखते हैं, उनको ऐसा क्लेश सहन करना पड़ता है।

सरला यह सब सुन और देख यद्यपि कुछ शान्त हुई परन्तु मनकी प्रसन्नता कैसे हो सकती थी; क्योंकि इसने प्राण-पर्य्यन्त बल लगाकर इसे मनुष्य बनानेका प्रयत्न किया था।

सुबोधचन्द्रजीने उस बाबूकी सहायतासे वह टूटा-फूटा घर जहां बालक सुकुमारको ले गये थे देखा और स्कूलमें जाकर उन बालकोंके माता-पिताके नाम पूछे और उनसे जाकर मिले। फिर उनसे उनके बालकोंकी सारी कथा कह सुनाई। वह भी उनको सुधारनेमें प्रयत्न करने लगे।

एक दिन सरलाने सुबोधचंद्रजीसे फिर कहा कि संतानमें सद्भाव, पवित्र लक्ष और उच्चादर्श स्थापित करनेके लिये कोई और भी उपाय है जिससे स्कूलमें पढ़नेवाले बालक भी इन भावोंसे विचलित न हों?

सु०—संतानकी आत्मिक उन्नतिके लिये मनमें दृढ़प्रतिज्ञ होने और स्वास्थ्य-रक्षाके लिये यदि हमारे प्रयत्न सफल न हों तो हमारा समस्त प्रयत्न व्यर्थ है।

स०—तो फिर क्या क्या करना चाहिये, आप कहें।

सु०—जब बालक बड़े हों तो माता-पिताको उचित है कि

प्रायः उनको अपने साथ रक्खें। जहां बच्चे खेलने जायें वहींपर कभी २ आप भी जायें और पिता भी उसके साथ खेलें। जहांपर जानेसे बच्चोंपर भला प्रभाव पड़े वहां उसे ले जाया करें।

स०—तब तो आप पहिलेकी अपेक्षा अधिक समय बच्चेको दिया करें और ऐसा प्रबंध करें कि यह बुरी संगतमें कदापि न पड़े। आपके समय देनेसे इसके पाप प्रलोभन दब जायंगे और सद्दृष्टान्त अनुकरणसे इसमें उच्च कामना उत्पन्न होगी।

सु०—एक उपाय यह है कि बच्चा सर्वदा किसी न किसी कार्य्यमें लगा रहे।

स०—इससे क्या होगा।

सु०—यदि बच्चा किसी समय भी आलसी होकर न बैठेगा तो उसके मनमें सदैव कार्य्योत्साह बना रहेगा, दुर्व्यसनोंकी ओर मन न जायेगा।

स०—मेरी समझमें बच्चोंको ऐसी ऐसी वस्तुओंसे प्रेम कराना चाहिये जिनसे उसके मनमें उच्च भाव उत्पन्न हों।

सु०—इससे बढ़कर लाभदायक यह है कि बालकोंको उत्तमोत्तम दृश्य देखनेको और उत्तमोत्तम पुस्तकें पढ़नेको देना चाहिये जिनसे वह अपने जीवनका लक्ष्य स्थिर कर सकें और बालक निर्म्मल चरित्र हो, ज्ञानवान् और धर्म्मपरायण हो, वीरत्व, साहसको अपना जीवनोद्देश्य बना सके। और जिनके आचारों व व्यवहारों तथा जिनकी संगतिसे अपने लक्षसे भ्रष्ट हों उनसे

सदैव उनको सुरक्षित रखना उचित है। धनोपार्जनकी अपेक्षा आचार संगठन बहुत लाभदायक है।

बच्चोंके मनमें इस बातका दृढ़ विश्वास दिला देना चाहिये कि मनुष्यके जीवनमें आनन्द सुख एक मात्र ईश्वरकी कृपासे ही प्राप्त होता है। बच्चोंको यह पूर्ण रूपसे समझा देना चाहिये कि मनुष्य अल्प शक्ति, अल्प ज्ञान और अल्प बुद्धिवाला होता है। छोटे बच्चोंमें बड़ोंकी अपेक्षा यह गुण बहुत ही कम होते हैं। अवस्था, विद्या और तजरबेसे मनुष्यमें बल, बुद्धि और ज्ञान बढ़ता है। इस प्रकारका दृढ़ निश्चय हो जानेसे ही बड़ोंमें उसकी भक्ति और श्रद्धा स्वतः उत्पन्न हो जायेगी और उनको यह भी भलीभांति समझा देना चाहिये कि जिस प्रकार लवण समस्त भोजनको सुस्वादु कर देता है ठीक वैसे ही वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध मनुष्योंकी संगति मनुष्यके जीवनको आनन्दमय कर देती है।

बच्चोंको यह दृढ़ विश्वास करा देना चाहिये कि साधुभाव, और परोपकार आत्मगौरव-रक्षासे ही मनुष्य मनुष्य बन सकता है। यह भी समझा देना आवश्यक है कि जो कार्य्य जितना कठिन और दुस्साध्य हो उसके लिये उतना ही अधिक परिश्रम करना चाहिये। संसारमें ऐसा कोई कार्य्य नहीं जो मनुष्य न कर सके। महात्माओंके जीवनचरित पढ़ाकर यह भी निश्चय करा देना आवश्यक है कि जगतके कल्याणके लिये सज्जन पुरुष अपना आराम और सुख परित्याग कर देते हैं। आत्म-बलिदानसे ही देशका कल्याण हो सकता है।

सबसे बढ़कर यह सुबोध बालकोंके हृदयमें अंकित कर देनेकी आवश्यकता है कि इस संसारमें अनेक प्रकारके प्रलोभन मनुष्यको सदाचार और उच्च भावोंसे गिरानेको उपस्थित हो जाते हैं इनसे मनुष्यको बचे रहना चाहिये।

सबसे बढ़कर सर्वशक्तिमान् जगत्कर्त्ता जगदीश्वरका अस्तित्व उनके हृदयमें होना परम आवश्यक है। उन्हें इस बातका पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि ईश्वर-भक्ति ही मनुष्यमात्रके जीवनका लक्ष्य होना चाहिये। मंगलमय भगवानकी कृपादृष्टि ही मनुष्यको सर्वशक्ति प्रदान करती है। इस संसारमें सुख सौभाग्य और परलोकमें सद्गतिदाता वही ईश्वर परमात्मा हैं। उन्हींका आश्रय लेना, उन्हींकी परिचर्य्या, उन्हींकी उपासना मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है।

स०—यह सब गुण बच्चोंमें लानेके उपाय भी तो वर्णन कीजिये।

सु०—एक मात्र महात्माओंका जीवन-चरित पढ़ाने और उनको देशभक्त, धर्म्मनिष्ठ सज्जनोंके जीवन-चरितकी कथा-कहानियोंके सुनानेसे स्वयं यह भाव जागृत हो उठते हैं। सुप्रसिद्ध उत्तमोत्तम स्थानोंमें उनको ले जाकर उन स्थानोंकी महत्ताकी गल्प उनको भलीभांति समझाई जावे तो इस प्रकार उनके हृदयमें वही कार्य्य-संपादनकी स्वयं-इच्छा उत्पन्न हो जावेगी।

स०—निस्संदेह सब बंधुओंको प्रत्येक संतानके लिये ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिये इसीसे देशका कल्याण होगा।

इति।
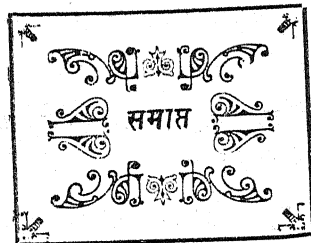
गृह-धर्म—

प्रकाशक—नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स, लाहौर